रू. 25.00

अंक–27

नवम्बर 2009 – सितम्बर 2011

चन्द्रताल

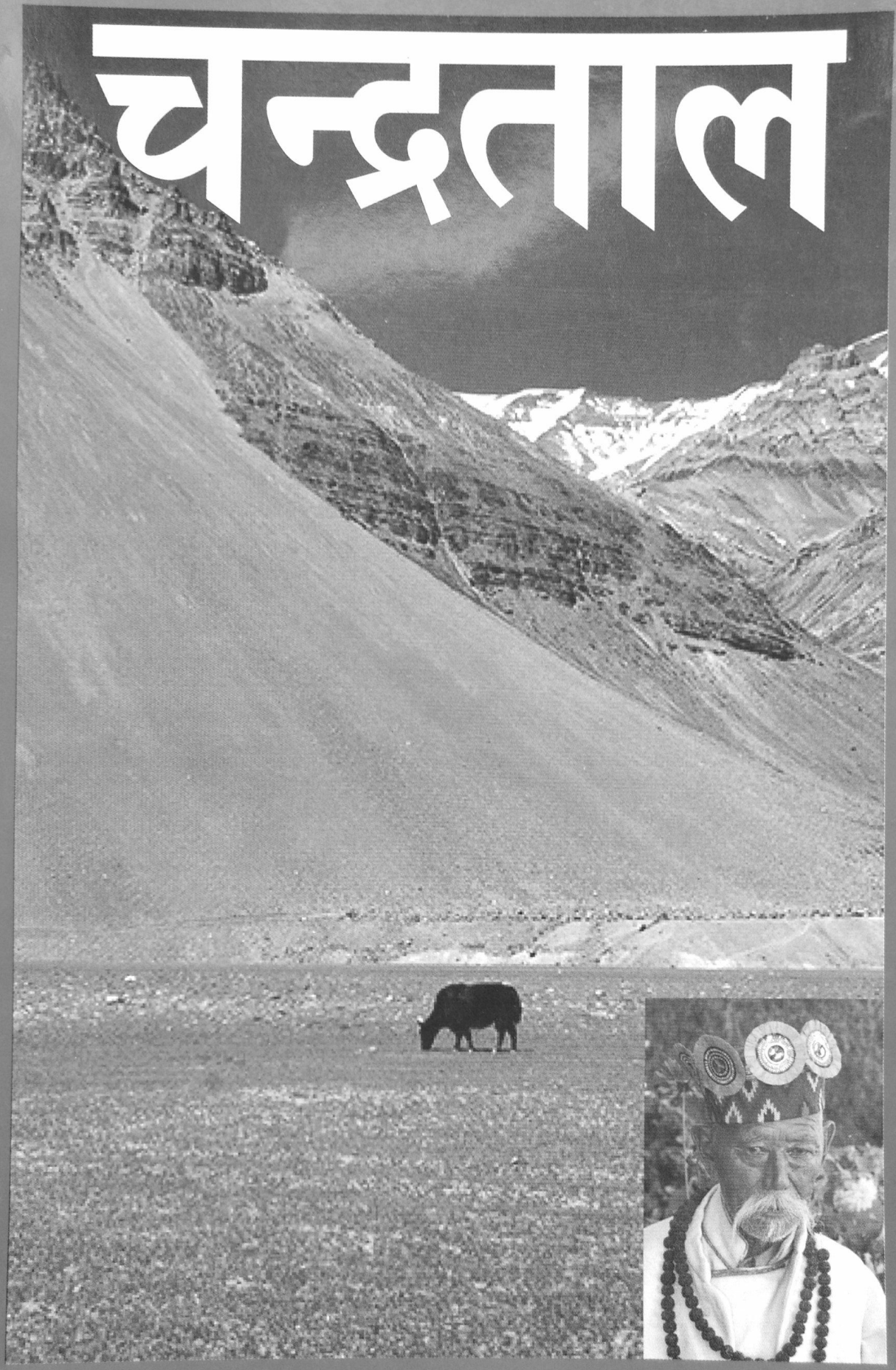

चन्द्रताल - 27

नवम्बर 2009–सितम्बर 2011

संपादकीय			2
पाठकीय			3
कविता	चन्द्रा और भागा	श्रवण कुमार	5
	यथार्थ के तल	सुरेन्द्र शौंडा (सूरी)	6
कसौटी	बलदेव कृष्ण		8
कहानी	बिल्ली का बच्चा	ईशिता आर. गिरीश	9
क्षेत्रीय दृष्टि	जिस्पा डेम–लाहुल का विकास या विनाश	छोरिंङ दोर्जे	11
साहित्य	एक स्त्री का व्यथा गीत	उरसेम लता	13
श्रद्धांजली	मामाजी नहीं रहे	कुलजीत क्रोफा	27
लोकगाथा	पट्टनवादी के कीर्तिंग गांव के दो सहोदर भाइयों का कथात्मक घुरे गीत	के. अंगरूप लाहुली	29
धर्म	उदार सांस्कृतिक व्यक्तित्व : बौद्ध संस्कार	टशी पलजोर	32
कला	स्पिति के गोम्पा : बौद्ध विहार	मौलू राम ठाकुर	39
	पटनघाटी में प्रचलित कुछ लोकोक्तियां	डॉ. अशोक कुमार एवं दौलत ठाकुर	43
विविध	लाहुली कृषक वर्ग का भेड़–बकरियों के साथ सामंजस्य आखिर कब तक?	विकास ओथङबा	44
देव परम्परा	कुलूत जनपद में नागों एवं अप्सराओं का वर्चस्व	तेजराम नेगी	46
समीक्षा	लाहुली साहित्य – एक दृष्टिकोण	सुरेन्द्र शौंडा (सूरी)	49
	स्पीति	राज कुमार तम्फैल	50
जीवनी	मिला रेपा की जीवनी	अजेय एवं ठिनले नमज्ञल	54
संस्मरण	शीत मरूस्थल में कुछ दिन	सूरत राम ठाकुर	57
आयोजन	लाहुल के विभिन्न समुदायों में मृतक संस्कार विषय पर सेमीनार		65
प्लेनरी सत्र	जिस्पा डेम परियोजना पर चर्चा		69

मुख पृष्ठः स्पीति और स्व0 गुड्डङ गुर मेमे

सम्पादकीय

यह अंक लगभग अठारह महीने के पश्चात निकल रहा है। इस विलम्ब के कई कारण हैं। मूलतः लाहुल एवं स्पीति एक ऐसा भौगोलिक खंड है जो सदियों से अलग–थलग रहा है। लेकिन इसकी भौगोलिक विषमता से आगे बढ़ कर यहां पर कला व धार्मिक प्रक्रिया थमी नहीं रेबग, मरगुल व घण्डाड़ इसका जीता जागता उदाहरण है। यहां हिन्दू शैली ने चम्बा व कश्मीर की तरफ से प्रवेश किया, तो बौद्ध मठ लद्दाख व तिब्बती बौद्ध धर्म से प्रभावित रहे हैं। बौद्ध धर्म से सम्बन्धित धार्मिक साहित्य का प्रभाव यहां रहा है मगर हिन्दू धर्म से सम्बन्धित पठन सामग्री अपेक्षाकृत कम है। ऐसी स्थिति में लाहुल एंव स्पीति में साहित्यिक पठन–पाठन व रचना प्रक्रिया एक विषम कार्य है। फिर भी ऐसा नहीं कि लाहुल इससे अछूता रहा हो। यहां व्यक्तिगत प्रयास काफी हुए हैं लेकिन मूलभूत आवश्यकताओं के चलते इसे बढ़ावा नहीं मिल पाया। स्वतन्त्रता के पश्चात लाहुल शिक्षा के क्षेत्र में आगे से आगे बढ़ता जा रहा है। इसकी परिणति आज हम देख रहे हैं कि ऐसा कोई क्षेत्र नहीं बचा जहां हम कार्यरत नहीं हैं। पांच छह दशक में हमने आर्थिक उन्नति के नए आयाम जोड़े हैं परन्तु साहित्य एक ऐसा क्षेत्र है जहां से आप अपनी जीविका नहीं चला सकते तथा साथ में यह निसन्देह एक विषम कार्य होता है, जहां आपको नियमित कुछ न कुछ सृजित करते रहना पड़ता है ताकि आपकी कलम कुन्द न पड़ जाए। पुरातन में रिन्चेन ज़ङपो व आज़ादी के पश्चात स्व. श्री रामलोक स्व. श्री अंगरूप लाहुली और अब श्री छेरिङ दोर्जे श्री तोबदन, श्री राम नाथ साहनी, श्री अजय, और श्री सतीश लोप्पा इस दुस्साध्य कार्य में रत हैं। इनके अलावा बहुत सारे लोग गुपचुप भी कार्य कर रहे हैं ऐसा मुझे आभास है। कला के क्षेत्र में स्व. योनतन के पश्चात वर्तमान में श्री सुखदास, श्री अशोक, व, श्री सुरेन्द्र शौण्ड़ा सूरी तथा श्री अनिल इस विधा में कार्यरत हैं। इनके अलावा फोटोग्राफी के क्षेत्र में श्री किशन बोगट्रपा व श्री राजेश बाबा काफी कार्य कर रहे हैं। इस तरह बहुत से लोग जोकि नेपथ्य में विभिन्न विधाओं में कार्यरत हैं। जहां तक संगीत का क्षेत्र है, तो इसके हम बहुत धनी हैं। यहां हर अनुष्ठान के लिए नियम से बद्ध अपना राग है और यह सघन रुप से मधुर व अन्तःकरण को छूने वाला है। इस संगीत की विधा को आज जाति भेद में बांधकर देखे जाने, इसके प्रयोग वाले अनुष्ठानों के समाप्त होने से इसके निष्क्रिय होने का आभास होता है। लेकिन इस विधा पर भी कुछ जुझारू लोग कार्यरत हैं। श्री राम देव व अन्य इस विधा को संजोने में जुटे हैं। आज हमारे पास विभिन्न क्षेत्रों से सेवानिवृत्त व्यक्तियों का ऐसा विपुल श्रम संसाधन है कि अगर वह पूरी निष्ठा से प्रयास करें तो वह अपने अनुभव के बल पर लाहुल एवं स्पीति में अनेक क्षेत्रों में कार्य कर सकते हैं। आज इनकी निष्क्रियता से अनुभव का एक विपुल भण्डार ज़ाया हो रहा है।

यह अंक रचनाओं की विविधता को लेकर फिर से आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

बिल्ली का बच्चा में ईशिता ने स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के अन्तर्द्वन्द्वों को व्यक्त करने की कोशिश की है। वहीं क्षेत्रीय दृष्टि में श्री छेरिङ दोर्ज़े जी ने जिस्पा बांध के कुप्रभावों पर प्रकाश डाला है जिससे कालान्तर में विनाशकारी परिणाम हो सकते है। वहीं स्व. के. अंगरूप जी द्वारा संकलित पटन वादी के किर्तिंग गांव के दो भाइयों का कथात्मक घुरे गीत में असमय बर्फ की विभीषिका का वर्णन है जिसमें रघु और भगुमान हिमस्खलन के कारण अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गए। वहीं शिरढ़ काहिका में श्री तेज राम नेगी ने इस उत्सव का विशद् चित्रण किया है।

डॉ. उरसेम लता द्वारा रूपी रानी के घुरे का नाट्य रूपान्तरण लाहुली साहित्य के स्थानीय कथानकों को नाट्य विधा में ढालने का प्रयास सराहनीय है। अन्तर्महाविद्यालय युवा महोत्सव में इसका मंचन भी किया गया था। श्री शेरू बाबा ने भी कुछ वर्ष पूर्व सोनी भोटड़ी का नाट्य रूपान्तरण करके इसका मंचन भी किया था।

इस बार स्पीति पर तीन लेख हैं जिनमें श्री एम.आर. ठाकुर ने ताबो गोम्पा पर एक वृहत् सामग्री प्रस्तुत की है व आर. के. तम्फेल द्वारा स्पीति घाटी पर विस्तृत विवरण और डॉ. सूरत ठाकुर ने अपनी स्पीति यात्रा का रोचक वर्णन पेश किया है। श्री टशि पल्जोर जी द्वारा प्रो. उपाध्याय द्वारा रचित बौद्ध संस्कार (बौद्ध जीवन पद्धति) का सारांश भी एक महत्वपूर्ण लेख इस बार स्थाई स्तम्भों के अतिरिक्त पेश है जिसे हमारे सुधी पाठक अवश्य पसंद करेंगें।

पाठकीय

आदरणीय सम्पादक महोदय,

'चन्द्रताल' का अक्तूबर 2008–अक्तूबर 2009 का अंक मिला तो शीघ्र–शीघ्र सारे आवरण समेत 48 पन्ने पलट डाले। मोटे तौर पर एक ही सरसरी नज़र डालने के बाद पत्रिका को चन्द्रताल के लगभग पुराने सभी अंकों के ढेर पर रख दिया कि बाद में पढ़कर प्रतिक्रिया भेजूंगा। कारण यह था कि 27वां अंक आते–आते एक बरस बीतेगा, ऐसा 26वें अंक के आवरण पर छपे दिनांक से अहसास हो गया था। खैर, ''चन्द्रताल'' का इन्तज़ार आज भी उसी निष्ठा से करता हूं जैसा पहले करता था। ''चन्द्रताल'' में लाहुल की संस्कृति, साहित्य व कला को ईमानदारी से स्थान दिया जाता है यह बड़ी बात है। आज हमारी संस्कृति उतनी समृद्ध नहीं रही जितनी पहले हुआ करती थी। मिलावट के रोग से यह भी नहीं बच पाई। आगे बढ़कर आधुनिक बनने के चक्र में हमने कई कुछ खो दिया है। भाषा, वेश–भूषा, रीति–रिवाज़, उत्सव, खान–पान की व्यवस्था ..... आदि को भूल रहे हैं। आगे की पीढ़ी भाषा तक नहीं जानती तो रीति–रिवाज़ के बारे में तो सोच भी नहीं सकते। चिंतक सतीश लोप्पा का अपनी माटी के प्रति प्यार व दर्द साफ दिखता है या महसूस किया जा सकता है। विशेष रपट में ''जब मृत काग जीवित हो उठे'' में जो कुछ प्रयास मृतप्रायः लोक संस्कृति को जीवित करने के बारे लिखा है, सचमुच संतुष्ट करता है व सुखद अनुभूति देता है। अपने भूले–बिसरे सभ्याचार को ऐसे मंच पर पुनर्जीवित करने के प्रयास जिन लोगों ने किए वो धारा के विपरीत तैरने के समान है। लोकभाषा में विकास ने विलुप्त हो रहे लोक शब्दों पर लेख लिखकर मेरी चिन्ता का भी साथ दिया। पांगी घाटी की बोली के शब्दों पर भी वैसे ही खतरे के बादल मंडरा रहे हैं जैसे कि पटनी बोली पर। घरसंगी ने भी उसी चिन्ता का ज़िक्र उदाहरण दे कर किया है। मिलारेपा की जीवनी लिखकर ठिनले व अजेय ने निःस्वार्थ, ठोस व अनूठा काम किया है। अजेय की कविताएं पिछले कई अंकों से पढ़ने को नहीं मिल रही हैं। डॉ. उरसेम, डॉ. दयानन्द गौतम व सत्यपाल भटनागर जैसे स्थापित लेखकों को साथ जोड़ना 'चन्द्रताल' के पाठकों के लिए वरदान है।

लाहुल की समृद्ध संस्कृति पांगी घाटी की संस्कृति से काफी मेल खाती है, खासकर तीज–त्यौहार। इसलिए चन्द्रताल में पांगी घाटी के बारे शोधात्मक लेखों को भी स्थान दिया जाए। जो कुछ आज तक पांगी घाटी पर लिखा गया है वह केवल लेखकों ने अपने–अपने अनुभव तथा यात्रा वृत्तोंत लिखे हैं। बाहरी लेखकों के संस्मरण भी आधे–अधूरे ही होते हैं। कारण स्पष्ट है कि उन्हें वहां की भाषा व संस्कृति के बारे पूर्ण ज्ञान नहीं होता। परिणामस्वरूप कभी–कभी अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है। बड़े खेद का विषय है कि पांगी घाटी के इतिहास के विषय में केवल तीन संभावनाओं पर ही हर लेखक ने अपने ख्याली घोड़े दौड़ाए हैं। इन तुक्कों के अतिरिक्त किसी ने भी शोधपूरक कार्य नहीं किए हैं। 'चन्द्रताल' शोधपरक रचनाओं को आमंत्रित कर सकती है। नए अंक के इन्तज़ार में .....

गणेश भारद्वाज 'ग़नी'

,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,

स्वांगला एरतोग को चन्द्रताल जैसी पत्रिका के लिए बधाई। लाहुल स्पीति में जिस कला और संस्कृति उत्थान की बात सोसायटी कहती है, उसका निःसन्देह यह पत्रिका भली प्रकार निर्वहन कर रही है। अंक 26 को पढ़ते हुए मुझे ऐसा ही महसूस हुआ। किसी भी अन्य अच्छी पत्रिका के समान यहां भी कविता, कहानी एवं लेख, सभी का अच्छा समन्वय देखने को मिला। फिर भी सर्वाधिक आकर्षित मुझे पत्रिका में छपे लेखों ने किया है जो कि अनेक प्रकार की सूचना का भण्डार हैं। किस–किस के बारे में बात करूं। चाहे लाहुली रीति–रिवाज़ों के बारे में श्री रामनाथ साहनी और सतीश लोप्पा के लेख हों या 'थंका' जैसी अमूल्य विरासत के बारे में श्री मौलू राम जी और सुखदास जी के लेख – सभी सहेज कर रखने लायक हैं– कभी फिर से, बार–बार पढ़ने के लिए।

धर्म और मिथकों पर लेख भी अच्छे लगे। मिलारेपा की जीवनी पर पहले भी अजेय से बातचीत हुई थी। बहुत विस्तार से घटनाओं का वर्णन है, पढ़ कर अच्छा लगा। अनुवाद अच्छा है– मूल लेख सा प्रतीत होता है। इस तरह के लेख, यह सब बातें, किसी दूसरे विश्व की सी लगती हैं– जादूनगरी सी, जहां बार–बार जाने को जी चाहे। आशा है, भविष्य में भी ऐसे ज्ञानवर्धक लेख पढ़ने को मिलते रहेंगे।

कविता – कहानी में यद्यपि अभी भी बेहतर होने की संभावना है, तकनीक, भाषा और विचार, सभी क्षेत्रों में। जैसे–जैसे, हम स्थानीय लोग अपने पाठन का स्तर और दायरा बढ़ाते रहेंगे, शब्दों और तकनीक और विचार सभी ओर विकास स्वतः ही होता रहेगा।

अनेक शुभकामनाएं!

ईशिता आर. गिरीश
शास्त्रीनगर, कुल्लू।

चन्द्रा और भागा

चन्द्रा और भागा की प्रेम कहानी
है बड़ी निराली और स्यानी
एक थी बेटी शीतल चन्द्रमा की
दूसरा पुत्र दहकते सूर्य का
दोनों का मिलन हो सकता न था
फिर भी प्रेम का बन्धन अटूट था
चन्द्रा और भागा की प्रेम कहानी
है बड़ी निराली और स्यानी

प्रेम की खातिर उतरे बारालाचा पर
ली सौगन्ध, बिछुड़कर भी एक होंगे, जियेंगे गर
दो दिशायें, दो प्राण, बढ़ रहे थे आगे दो अनजान
दोनो की मंज़िल एक थी, एक ही थी, दोनों की पहचान
चन्द्रा और भागा की प्रेम कहानी
है बड़ी निराली और स्यानी
मिलने को बेताव थी चन्द्रा, थी बड़ी ही बेचैन
भागा का भी हाल यही था, पर खुले रखे थे उसने, धीरज के दो नैन
पहुंचकर चन्द्रा तांदी में पहले, रह गई अवाक
भागा न पहुंचा था, देखा, ढूंढा, तभी दिखा आता मस्त बेवाक
चन्द्रा और भागा की प्रेम कहानी
है बड़ी निराली और स्यानी

दोनों मिलकर एक हुये ऐसे
दो प्राण समाये हों एक जिस्म में जैसे
खायी कसम अब न होंगे अलग
रहेंगे एक–साथ, दुनियां रहेगी जब तलग
चन्द्रा और भागा की प्रेम कहानी
है बड़ी निराली और स्यानी

वक्त सुनाता है अब भी, दोनों के मिलन की कहानी
लाहुल के लिये चन्द्रा और भागा हैं, सदियों से जानी–पहचानी
नहीं कहता कोई चन्द्रा और भागा अलग हैं अब
अब तो जानते हैं, पहचानते हैं, चन्द्रा भागा इन्हें सब
चन्द्रा और भागा की प्रेम कहानी
है बड़ी निराली और स्यानी।

– श्रवण कुमार

यथार्थ के तल

भीड़ भरी सड़क के
एक टी–स्टॉल की मेज़ पर
समोसा बांट कर खाते
दो मज़दूर बच्चे।
लड़की की आंखों में अनिश्चितता भरा संकोच था
और लड़के के मैले चेहरे पर निश्छल मुस्कुराहट।

बेटा, चाय पिओगे?
मेरे दोस्त ने उनकी तरफ मुड़कर हमदर्दी से पूछा।
अंकल पैसे नहीं हैं ....।
कोई बात नहीं पी लो।
आप पिलाओगे न?
लड़के की आंखें आशा से जगमगा उठीं।

और समोसे खाआगे?
मैंने अपने अनिश्चय को दबा कर पूछ लिया।
नहीं।
दोनों ने चाय की चुस्की लेते हुए कहा।
उनका आत्मसम्मान आश्वस्त करने वाला था।

फिर कुछ क्षण एक–दूसरे की ओर देखकर
दोनों सहमति से कह उठे ....
अंकल हम पूरी खाएंगे।
अभावों की सीमा तोड़ती उनकी नन्हीं आकांक्षाएं
मन फिर आशंकित हो उठा।

इन बेचारों का भी क्या जीवन है
कागज़ की नावों सा ....।
मेरे दोस्त का स्वर दुःख से भरा था।
और कुछ न हो पाने के असहाय भाव से।

पर उन दोनों के साथियों की एक बेपरवाह टोली
जो अचानक उनकी मेज़ के इर्दगिर्द जमा हो
गई थी
पूरियों पर झपट रही थी।
निश्छल मुस्कुराहट वाला नन्हा लड़का कुछ
भांपकर
जल्दी–जल्दी निवाले ठूंसने लगा।
और फिर वे सभी ठिठोली करते
अगली योजना बनाने में लग गये।
हम तटस्थ से देखते रहे
उनका उन्मुक्त कोलाहल।
जो वर्तमान के पक्षपात से अनाहत
भविष्य की अनिश्चितताओं से विमुख
और उनकी अनजान स्वीकार्यता से अनभिज्ञ
यथार्थ के एक और ही तल में जी रहा था।
जहां अर्थहीन थी
तुलनाओं से उपजने वाली पीड़ा।
असंगत थी
मेरे दोस्त की असहायता,
और प्रभावहीन थे यूनिफॉर्म पहने चहकते बच्चे
व उनके स्नेही माता पिता। - सुरेन्द्र शौंडा सूरी

सर्वथा पृथक
पृथक विशिष्टता
क्रम में आदान प्रदान
समाज अभिव्यक्त होती
भीतरी नाम–नाम नहीं
सबसे कर निवास करते
जीवन स्तर– आर्थिक स्थिति
घर द्वार, व्यक्त होता
दृष्टि में पड़े समाज में
स्त्री कार्य है
जीवन को दिशा दे
कार्य विभाजन पर
इकाईयां
वर्ग वृत और परिवार
व्याख्या होती आधार पर
समानता वाले समूहों में
कड़ियों से जुड़े रहते
पति–पत्नी का संबंध निकट होता
पत्नी भीतर रहती
आमंत्रित होने पर
सामाजिक वृत में
महत्वपूर्ण स्थान पर प्रयोग होता
दृष्टि में विशिष्टता सहज नहीं
दिखावा – रूप प्रदर्शन
प्रिय होता
जीवन स्तर सामाजिक समूह
आर्थिक सम्पन्नता
स्तर से प्रदर्शित होती
आत्ममुग्धा मानसिकता
के साकार रूप होते
व्यक्तित्व पर स्वयं
विश्वास जमाती अधिकार से
विशिष्ट व्यक्तित्व को
पुनः सृजन करती
सामाजिक राति–रिवाज़

रूप माध्यम का
निर्देशन सर्वोपरी
ध्यानाकर्षण सुन्दरता द्वारा
वस्तु रूप में
स्थित करना नहीं
अहम को! अपने रूप का
नहीं प्रतिबिम्ब मानता
विपरीत होती समाज चाहता
साधन काम वासना का
स्त्री की स्थिति श्रंगार का उद्देश्य
स्वतंत्र व्यक्तित्व का उद्घाटन नहीं
शिकार बनना भाग है
अव्यावहारिक वस्त्र नाजुक
रूप प्रदर्शन में
विकृत रूप देती
शरीर वक्रता नग्न करती
अति श्रंगार और नग्नता
स्त्री को अलंकृत नहीं करता
सामाजिक सुरूचि के नियमवत से
भावनात्मक और आदर्श
मूल्य पाती है।
शब्द प्रेम का अर्थ
एक ही होता
स्त्री और पुरूष
शब्द का प्रयोग
समझ बूझ कर ना हो
पैदा हो जाती विलगाव
पुरूष प्रेम पुरूष का
हिस्सा भर होता
सम्पूर्ण अस्तित्व होता
यह स्त्री का समझ स्पष्ट प्रेम
अनुराग नहीं आत्मिक वरदान है
बंधन नहीं परवाह नहीं
प्यार स्त्री का शर्तहीन
एक विश्वास अपनाती
पुरूष प्रतिदान पाता
आत्म समर्पित प्रेम
मेरी दृष्टि में
आवेगपूर्ण प्रेम भावुकता लिए
सच्चा या महान प्रेमी नहीं सकते
प्रेम में व्यक्तित्व भूल
प्राकृतिक नियम है
बिन पुरूष स्त्री अस्तित्व नहीं
प्रसंग में हमें
लेना लेना देना नहीं
संबंध में विचारों की
परिसिितियों की भिन्नता
सर्वोपरि महत्वकांक्षा पुरूष
अधिपत्य ज़माने की चेष्टा
स्वभावतः कार्यरत
बचपन से पुरूष उच्च जीव
देखने की अम्यस्त
समानता कमी आ सकती
दावा अपनी मनुष्यता प्रति
न त्यागनी
उच्च अस्तित्व में विलोप हुआ सा चाहती
आत्मा और देह समर्पित
विकल्प नहीं रहता
पुरूष मुख्य होता
सर्वोतम का प्रतिनिधित्व
भाग्य पर आश्रित स्त्री
अत्याचारी संरक्षक की आज्ञा
शिरोधार्य मानता
दासत्व स्वीकार बेचैन रहती
दासता से ग्रस्त
गौण अवस्था वावजूद इसके
उठने की चेष्टा करती
शरीर भावना और व्यवहार
सम्मुख अपना अस्तित्व मिटा
धर्म का रूप लेता
औ – पुरूष!
मैं तुमसे प्रेम करूंगी
प्रतीक्षा करूंगी
सौच से आनन्द की अनुभूति
शीघ्र तुमसे परिचित होऊंगी
तुमसे खासकर
जो प्रथम हो
पुरूष एक वर्ग होता
सीमित आकार सम्भव है
पुरुष पहले मनुष्य बने
निम्न स्तर के व्यक्ति पर
समर्पित स्त्री
स्वयं नीचा मानती
अन्ततः
किसी की तलाश है।

– कृष्ण ठाकुर
– [redacted]

कसौटी

चन्द्रताल पत्रिका को आरम्भ हुए पूरे पन्द्रह वर्ष हो चुके हैं। इस बीच हम ने लाहुल में बहुत से परिवर्तन देखे हैं। ये परिवर्तन विभिन्न स्तरों पर देखे जा सकते हैं। सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक ढांचे में भी काफी क्रियाशीलता व परिवर्तन देखे जा सकते हैं। विकास हमारे समाज का प्रथम मुद्दा बन कर रह गया है। और विकास की इस अंधी दौड़ में हम अपने घरोहरों, मांह बोली, संयुक्त परिवार के बुनियादी ढाचे को ही जीर्ण कर रहे हैं। इस ढ़ाचे की चूलें सिर्फ आर्थिक मूल्यों की वजह से टिकी हैं, अन्यथा हमने एकाकी परिवार को अपने समाज के ढ़ाचे में संस्थागत रूप में निर्धारित कर ही दिया है। इसका कारण है तीव्र गति से हो रहा हमारा विकास। आज लाहुल के बहुसंख्य परिवारों का कुल्लू में अपना बगीचा है, घर है और अब हम ने कुल्लू से बाहर भी प्लोट लेना प्रारम्भ कर दिया है। नौकरी पेशा हमारी प्रगति का मुख्य साधन है और हमने इसका बखूबी लाभ उठाया है। आज ऐसा कोई सेक्टर नहीं है, जहां लाहुली व्यक्ति ने नियुक्ति न प्राप्त की हो। यही प्रगति का प्रतीक लाहुली समाज को आज ऐसी दिशा की तरफ ले जा रहा है जहां हम दिशा हीन होते जा रहे हैं। यह दिशा हीनता ही हमारी आज की सबसे बडी चुनौती है। इस दिशा हीनता से निकलने के लिए समाज के हर तबके को खासकर बुद्धिजीवी वर्ग को सामने आना होगा और विभिन्न समुदायों और वर्गों के साथ पूर्ण संवाद स्थापित करना होगा। यह समय इस नए विकास से प्राप्त सुखों में डूब कर इस भ्रान्ति को दूर करने का है कि यह उत्तरोत्तर विकास की गति स्थायी है हम अभी से इससे होने वाले दुष्प्रभावों से जूझ रहे हैं। समाज बाहर से सुसज्जित व सुखद अनुभूति लिए दिखाई दे रहा है पर अन्दर झांकें तो एक गूढ़ अन्धेरा मुंह बाय हमारी ओर ताक रहा है। अभी हम इससे भिज्ञ होकर भी अनभिज्ञता जता रहे हैं लेकिन हमारी अन्तरात्मा इस बोझ से लदी है कि क्या कभी इसका हल निकलेगा? क्या यह प्रगति का पथ अनुगमनीय है?

संभवतः स्वङलो सिटिज़न्ज़ फोरन, कुल्लू इस तरफ प्रयासरत है। यहां सेमीनारों की श्रृंखला के माध्यम से सभी पहलुओं पर विचार करके कुछ ठोस आधार बनाने हेतु प्रयास किए जा रहे हैं। मुझे ऐसा लगता है कि इस प्रकार के प्रयास हर स्तर पर होने चाहिएं ताकि समय रहते हम अपनी अस्मिता, मांह बोली और समृद्ध विरासत को संजो सकें और एक गुणात्मक जीवन शैली अपना सकें।

बलदेव कृष्ण

कहानी

बिल्ली का बच्चा

– ईशिता आर. गिरीश

''अजीब लड़की हो तुम, बिना बात इतनी देर से रोये चले जा रही हो।'' झरने किनारे ऊंचे पत्थर पर से फिसलती, ढलती सांझ के साथ, देवदार के लम्बे–ऊंचे पेड़ों के नीचे, जब मैं जीवन की मधुमय कल्पनाओं में डूबा था, तुम शायद अपने कुछ आंसुओं के लिए मेरा सहारा ढूंढ रही थी। पता नहीं, क्यों मैंने तुम्हें डांट दिया। अप्रत्याशित सी डांट से, तुम अचानक चुप होकर, मेरी ओर देखने लगी थीं। आंसू थम गए, और कुछ अस्फुट से शब्द बोली थी तुम।

''अपने लिए कहां रो रही हूं, सत्य! ..... वह मेरी ओर कितनी आशा से देख रहा था। उसे मेरे स्नेह, मेरे स्पर्श की आवश्यकता थी। उसकी चोट पर दवा करने के स्थान पर, मैं उस की ओर बस देखती रही और निकल आई। मैंने उसके लिए कुछ भी नहीं किया। उसकी आंखों की लाचारगी अब भी मुझे कोस रही है, सत्य! उसके सामने केवल मैं थी, और उसे मेरी दया नहीं, सहायता चाहिए थी.....।''

''ओ हो ऽऽ! छोड़ो भी, जो हो गया! अब उसे भूलो और इस झरने की तरफ देखो।

''ऐसे कैसे भूलूं? तुम अपने ऊपर ले कर देखो न! सोचो तो, कोई दर्द से छटपटाता, शब्दहीन भाषा में, तुम से कुछ मांग रहा है, और तुम सक्षम होकर भी, बिना कुछ किए, उसे दर्द में अकेला छोड़ कर निकल जाते हो! ..... यू आर सो सेल्फ सेंट्रेड! आई हेट यू।''

और मैं खामोश तुम्हारे तमतमाये मुंह को देखता रहा, तुम्हारा झटके से दूर जाना देखता रहा, तुम्हारे कहे शब्दों के अर्थ, और उन के भाव समझने की कोशिश करता रहा, तुम्हारे भीतर मातृत्व की बेचैनी और बचपने की ज़िद में अन्तर खोजता रहा।

मैंने तुम्हें डांट दिया! मैं सचमुच कितना आत्मकेन्द्रित हूं। कितनी आसानी से तुम्हारी भावनाओं को आहत किया था मैंने। और तुमने कितनी आसानी से अपने व्यवहार के लिए माफी मांगी थी, यह कहकर कि तुम्हें मेरे अन्दर भी एक बिल्ली का बच्चा दिखता है, जो अपना अधिकार मांग रहा हो।

उस दिन हम लम्बे समय के बाद मिल रहे थे, और एक आदमी की तरह, मैं माहौल को हल्का बनाना चाह रहा था। हालांकि, उस छोटे से बिल्ली के बच्चे के दर्द को तुम्हारी तरह मैं भी महसूस सकता हूं पर चोट खाए उस बिल्ली के बच्चे के लिए तुम कर ही क्या सकती थी? बहुत बार ऐसा होता है, कितने ही आवश्यक कार्यों को उपेक्षित छोड़, भीड़ के साथ–साथ धकियाते, आगे निकलना ही पड़ता है। उस छटपटाहट को तो भूलना ही पड़ता है न!

याद है, हमारी दोस्ती के शुरू के दिनों में, जब मैं तुम्हारे नरम दिल होने पर हंसता था, तुम कहती थी,

''हर औरत के अन्दर एक मां होती है, सत्य! वह बाहर निकलने के लिए उसकी उम्र का इन्तज़ार नहीं करती। औरत के अन्दर का यह प्रेम, उसे पूरे संसार की मां बना देता है। इस अन्दर की औरत की पहचान में इतनी ताकत ..... हंस रहे हो? .....''

'' इतनी गहरी बातें न किया करो, मैं बेहद साधरण आदमी हूं केवल सीधे शब्दों में कही बात समझता हूं। जीवन का यह दर्शन मेरी समझ से बाहर है, और मेरे लिए गैर ज़रूरी भी। मैं जीवन बस जीता हूं, कहता या सुनता नहीं!'' मैंने कहा था।

तुमने मुझे बताया था कि आदमी का साधारण होना तुम्हें पसन्द है। मानव की किसी भी भावना की तुम इज़्ज़त करती हो और अचानक हंस कर बोली थी, '' मैं वहशीपन को मानवीय भावना नहीं समझती।'' और पता नहीं क्यों देर तक हंसती रही थी। मुझे लगा जैसे तुम्हारे अन्दर की मां, किसी पर्दे में छिप गई थी और तुम्हारी आंखों से बच्चे की किलकारियां झांक रही थीं। तुम्हारा यही बचपना, यही खिलखिलाहट मुझे पसंद है। तुम्हारे साथ के पलों में से, हर दर्द को मैं बाहर रखना चाहता हूं। शायद इसी कारण, बिल्ली के बच्चे के लिए, तुम्हारी छटपटाहट को मैंने समझना नहीं चाहा। या फिर उन पलों में किसी और का महत्वपूर्ण होना मुझे भाया नहीं। और रूमानी होने की तुम से मेरी अपेक्षा ने मुझे संकीर्ण बना दिया।

उस समय तो नहीं समझा था, पर तुम्हारे पिघलते हुए दिल को अब समझ पाता हूं मैं। मेरे अन्तर में तुम्हारी तरह कोई मां तो नहीं उगती, पर विरक्त नहीं रहता मैं। सैंकड़ों बिल्ली के बच्चे उगते हैं मेरे अन्दर ढेर सारी भावनाएं लेकर। और उनका वहशीपन दबा कर, मैं हर भावना को महसूस लेता हूं। इस समय भी मुझे चारों ओर से घेरे खड़े हैं, बिल्ली के बहुत सारे बच्चे। जिनकी याचक दृष्टि और मूक पुकारों को, जाने कितनी बार अनसुना किया है मैने! कितने कितने दर्दों को कुचला है, कितने ही कर्त्तव्यों की की है अवहेलना।

तुम्हारी, लहरों की सी भावनाओं को अपनी ज़रूरत के अनुसार, मैं मोड़ना तो नहीं चाहता, पर मानव हो जाता हूं मैं। मुझे विश्वास है कि, मेरे मानव होने से, तुम अवश्य प्रेम करोगी, और मेरी डांट के पीछे छिपी मानवीय भावना, मेरी कमज़ोरी को भी माफ कर दोगी। उस बिल्ली के बच्चे के लिए मैंने भी महसूसा है। उस का दर्द व लाचारी मेरी आंखों में भी है। इस समय तुम मुझे देखो तो मैं भी रो रहा हूं उस नन्हे, चोट खाए, बिल्ली के बच्चे के लिए।

शास्त्रीनगर, कुल्लू
ज़िला कुल्लू हि.प्र.।

बधाई

राष्ट्रीय–अन्तरीष्ट्रीय पुरस्कारों से पुरस्कृत साहित्याचार्य प्रो. डी.डी. शर्मा इस वर्ष अप्रैल मास में राष्ट्रपति प्रतिभा सिंह प्राटिल द्वारा पद्मश्री सम्मान से विभूषित किए गए। डिस्क्रिप्टिव ग्रामर एण्ड बोकेबुलरी इन चिनाली पुस्तक के माध्यम से संस्कृत से मिलती– जुलती लाहुल–स्पीति की चिनाली बोली को उजागर करने वाले प्रथम भाषा विद् है। इसके अतिरिथ्त हिमालय की विस्मय में भूमि लाहुल–स्पीति, हिमालय के खश, डिस्क्रिप्टिव ग्रामर ऑफ किन्नौरी, ट्राईबल लेग्वेजिज़ ऑफ हिमाचल–तीन वॉल्यूम, पिक्यूलिअर कस्टमज़ एडं राइटूस ऑफ हिमालियन पीप्ल आदि हिमाचल से सम्बन्धित पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है। प्रों डी. डी. शर्मा जी पत्रों के माध्यम से चन्द्रताल से जुडे है तथा हमें हमेशा प्रोत्साहित करते रहे हैं। चन्द्रताल परिवार की ओर से पद्मश्री सम्मान के लिए हार्दिक बधाई।

सम्पादक

जिस्पा डेम – लाहुल का विकास या विनाश

देश में बढ़ती ऊर्जा की खपत को देखते हुए सरकार उपलब्ध ऊर्जा स्रोतों – जल, तेल, कोयला इत्यादि प्राकृतिक संसाधनों से अधिक से अधिक विद्युत उत्पादन में जुट गई है। योजना को साकार करने हेतु उत्तर–प्रभाव पर बिना ध्यान दिए ही शीघ्रता से निर्माण कार्य आरम्भ किए जा रहे हैं जिसके फलस्वरूप स्थानीय जनता को विस्थापन का मानसिक तथा शारीरिक दुख झेलने पर मजबूर होना पड़ रहा है। सरकार पुनर्स्थापना के दुरूह कार्य को सुलझाने में असफल हो रही है। इसके अतिरिक्त धार्मिक और तीर्थ स्थलों, ऐतिहासिक स्मारकों, प्राचीन सांस्कृतिक धरोहरों और प्राकृतिक जल स्रोतों के भी लुप्त होने का खतरा सर्वदा बना रहता है।

ऐसा ही एक वृहत योजना ज़िला लाहुल–स्पीति के आरम्भिक बस्तियों के गांव जिस्पा में चनाब नदी के उत्तरी स्रोत नदी भागा पर 200 मीटर ऊंची बांध बनाकर ज़िला केन्द्र केलंग के समीप विद्युत शाला निर्माण करने की योजना तैयार की गई है।

इस महान 200 मीटर ऊंचे जलाशय के बनने पर लाहुल के 10 आरम्भिक ग्राम जलमग्न हो जाएंगे। जिसमें जिस्पा, सुमदो, दरचा, लिंगक्युम, बरयो, रंगयो, मंगसिंग, रारिक, छिका, योचे और बालती जिग ग्राम समूह सम्मिलित हैं। वैसे इन ग्रामों की जनसंख्या बहुत अधिक नहीं है, तथापि उन लोगों को अपने पूर्वजों की कर्मभूमि से विस्थापन का असह्य दुख तो झेलना पड़ेगा ही। दरचा ग्राम में तीन सौ वर्ष पुराना बौद्ध मन्दिर स्थापित है, वह भी इस जलाशय में समा जाएगा। जिस्पा ग्राम में प्राचीन ''धर्मपाल उत्तम वज्र'' (दोर्जे लेग्स–पा) और बौद्ध पूर्व धर्म बोन आस्था के देवता तिंगतिंगचा के स्मारक स्थित हैं ये भी जल समाधिस्त हो जाएंगे। इस प्रकार लिंगक्युम के समीप राणा नील पाल का प्राचीन स्मारक भी जलाशय के भीतर समा जाएगा।

हिमालय की श्वेत चोटियों और चिरहिमनदों (Glaciers) पर प्रदूषण के काले धब्बे पर्यावरण पर गम्भीर खतरे का संकेत दे रहे हैं। पर्यावरणविद् जानते हैं कि वर्तमान में हिमयुग का प्रतिसरण काल (Receding period) है और बर्फ को अप्राकृतिक ढंग से छेड़ने, अर्थात बर्फ पर चलना, शोर आदि से, जल्दी पिघल जाती है। हिमालय संसार का सबसे कम आयु का पर्वत है। लाहुल जैसे ''हिमनद घाटी'' (Glacial Valley) की भौगोलिक संरचना भंगुर (Fragile) परत (Stratum) श्रेणी में गिना जाता है। जिस्पा में इतने विशाल जलाशय का निर्माण विनाश को न्यौता देने के बराबर होगा।

विशाल जिस्पा डेम तीन लघु जलडमरुओं, बरसी घाटी, ब्रोक घाटी और दोचे घाटी में फैला हुआ होगा। शीतकाल में इन घाटियों में विनाशकारी हिमानी (Snow avalanches) गिरती रहती हैं। जो जलाशय में गिरने से छोटी मोटी सुनामी (Tsunami) बनकर बांध की दीवारों को नुकसान पहुंचा सकती है।

बांध की क्षति की सूरत में समस्त निचली घाटियों, लाहुल, पांगी, किश्तवाड़ और रामबन के लिए कहर साबित होगी। वर्ष 1836 में प्रसिद्ध शिगरी हिमनद (Glacier) के टूटने से चन्द्र नदी का बहाव रुक गया था और एक विशाल झील बन गया था। यह झील जब फटा तो लाहुल, पांगी और किश्तवाड में दर्जनों गांवों को बाढ़ ने बहा दिया था।

हिमालय का यह भूभाग भूचाल के लिहाज़ से अति संवेदनशील परिधि में आता है। वर्ष 1905 की कांगड़ा भूचाल के समय लाहुल के कई गांवों में घरों को गिरा दिए थे और कुछ लोगों ने जानें भी गंवाई थी।

चनाव नदी अन्तर्राष्ट्रीय नदी है इसे वर्ष 1947 में बंटवारे के समय पाकिस्तान को नदी जल प्रयोग का हक दे दिया गया था जिसे सिन्धु जल संधि कहा जाता है। इस दृष्टि से यदि चनाव पर इस तरह के बांध बनाए जाते हैं तो ब्रह्मपुत्र जैसी नदियों पर चीन द्वारा किए जा रहे निर्माणों की जब बात उठेगी तो भारत सरकार का पक्ष कमज़ोर पड़ सकता है।

लाहुल की भौगोलिक और प्राकृतिक स्थिति अन्य इलाकों से भिन्न है। हिमाचल प्रदेश की सरकार को आंखें मूंद कर विशाल बिजली योजना बनाने से पूर्व दीर्घकालीन और संतुलित पर्यावरण मित्र योजनाओं के लिए ही मंजूरी देनी चाहिए ताकि विकासात्मक योजनाएं विनाशकारी योजनाएं न बने।

हम बिजली योजनाओं से लाभान्वित होने के कतई विरोधी नहीं हैं। यदि सरकार बिजली उत्पादन करती है तो लारजी परियोजना की भान्ति नदी जल बहाव विधि (run of the river) को चुन कर चनाव नदी के जल बहाव मार्ग पर हिमाचल के अन्तिम छोर पांगी तक दर्जनों परियोजनाओं को विकसित कर सकती है। यही हमारी सरकार से विनति है कि जिस्पा बांध से लाहुल को भविष्य में होने वाली क्षति से बचाएं।

छेरिङ दोर्जे
उपाध्यक्ष
रिनचेन ज़ङपो साहित्यिक सांस्कृतिक सभा
केलंग ज़िला लाहुल–स्पीति

पुकार

विकल यह डगरिया
सूझा न पंथ, न दिशा
मस्तक की लकीरों में
जन–जन की अकुलाहट
मस्त गगन में उन्मुक्त हो कर
उड़ने की प्रबल चाह ——— मगर
द्वन्दात्मक अनुभूतियों से हुआ
आज वह जन आधीर
जिन्हें कभी था गर्व राष्ट्र पर
शोषकों के शोषण से
जब टपका वशोणित की धार
आज न पथ सूझा, न दिशा
हिय से जब प्रभु को पुकारा
प्रभु ने दी यूं सांत्वना।
ओ! धरा के कोमल काया
कोख से जन्म दे कर
मानव को मानव बनाया
द्वन्द्व रूपी भंवर में मानव
छद्म मन से मुझे पुकारा
तिमिर दुनिया में भटकती आत्मा
हिय में तृष्णा की प्रतिमा लिए
द्वन्द्व मन का विकल डगरिया
आज मुझे न रास आया
जब नहीं ज़िन्दगी तुम्हारे पास
करते फिर भी मेरी आस
कर्मों का लेखा–जोखा
अब तक नहीं किया
फिर क्यों करते आज———
मेरी पुकार?

डॉ. अशोक कुमार
कुकुमसेरी कॉलेज
(साभार – 'रोशन हो जहान रोशनी से' काव्य संग्रह)

दफन

दफन होती हैं यहां बहारें,
बे मौसम गिरे वर्फ की तरह।
दफन होती हैं यहां दीवारें,
किसी पुराने देवालय की तरह ।
दफन होते हैं यहां कई आंसू,
किसी सूखे झरने की तरह ।
दफन होती है यहां रोशनी,
किसी धुंधले बादलों की तरह।
दफन होती हैं यहां ज़िन्दगी,
किसी बेज़ुबान बदनसीब की तरह।

सुदर्शन चित्रकार

एक स्त्री का व्यथा गीत

– उरसेम लता

पात्र परिचय

1 राजा
2 रानी
3 दिव्य (रानी की सहेली)
4 राजकुमार घूंघर
5 राजकुमारी बंसरी
6 दरबारी–1, प्रहरी
7 आचार्य, काका
8 मंत्री, टीटा महन्त
9 साधू

वस्त्राभूषण

1 राजा–रानी के लिए लाहुली राजसी वस्त्राभूषण।
2 दरबारियों के लिए आम लाहुली पुरुषों के वस्त्राभूषण।
3 दिव्या के लिए आम लाहुली महिलाओं के वस्त्राभूषण।

मंच सज्जा

1 पहाड़ी शैली के राजमहल का सैट
2 महल के दो भाग – एक – दरबार
दूसरा – रानी का प्रकोष्ठ
3 महल के बाहर थोड़ा खुला स्थान
पौधे आदि दिखाए जा सकते हैं।
4 महल के पीछे परदे पर रूखे पहाड़ों का दृश्य।

पार्श्व में पहाड़ी बांसुरी की धुन निम्नलिखित नेपथ्य के शब्दों के साथ–साथ चलती रहेगी, प्रकाश धीरे–धीरे बढ़ेगा।

नेपथ्य :–

दुर्गम भूखण्ड ..... चारों ओर पसरे पहाड़ों का न खत्म होने वाला सिलसिला ..... रूखे मौन पहाड़ ..... पहाड़ों में बसती ज़िन्दगी ..... जहां छोटी–छोटी बातों में बसती है खुशियां ..... छोटे–छोटे अनुभवों में पोषित होते हैं ज़िन्दगी के कटु सत्य ..... और छोटी–छोटी दुनियाओं में है एक बड़ी दुनिया। इन्हीं पहाड़ों के बीच चलती है पहाड़ी ज़िन्दगी ..... और ज़िन्दगी को थामे रखती है पहाड़ियों की जिजीविषा। ज़िन्दगी से लड़ते–जूझते, थकते–हारते, खड़े होते–गिरते हैं फिर भी चलते चले जाते हैं निरन्तर। जहां छोटे–छोटे सपनों की खुशियां तो हैं पर ..... दुख ..... तकलीफें, परेशानियां ..... छोटी–छोटी नहीं ..... हरगिज़ नहीं .....पहाड़ सी परेशानियों के साथ पहाड़ सी ही ज़िन्दगी गुज़ारते हैं..... पहाड़ी लोग। जानते हैं तकलीफों के बीच भी कैसे ज़िन्दा रहा जाता है। कैसे तलाशे जा सकते हैं छोटे–छोटे सपने बडे–बड़े पहाड़ों के बीच और कैसे तकलीफों की कोख से पैदा होते हैं ज़िन्दगी के गीत .....

(नेपथ्य से संवाद बंद और मंच पर लाहुली जनजातीय क्षेत्र की बांसुरी की धुन व जनजातीय क्षेत्र में किए जाने वाले धीमे लोकनृत्य गीत की ताल पर धीमा नृत्य। सात नर्तकों का प्रवेश।

गीत :– शाभाले .....शाभाले .....शाभाले .....शाभाले ..... राजा घेपन शाभाले .....शाभाले .....शाभाले .....

(गीत धीरे–धीरे क्षीण। नर्तकों का प्रस्थान। धीरे–धीरे नेपथ्य से आवाज़, मंच पर धीरे–धीरे किसानों का प्रवेश।)

नेपथ्य : ज़िन्दगी इतनी भी आसां नहीं यहां ..... दगा दे जाता है मौसम पहाड़ों पे अकसर ..... निष्ठुर हो छोड़ देता है साथ .....। अब के जो ठहरा पानी बादलों में कहीं ..... अब के जो न बरसा ..... न बरसा..... तो न बरसा ..... तरसती रही आंखें, टकटकी लगाए गड़ी रही बादलों के बीच। (पात्र ये सब अभिनय करते रहेंगे) शामिल है तकलीफों में भी गीत ..... लगाते हैं गुहार उसके पास लगता है उन्हें, जो रूठ गया है उनसे उनकी किसी खता पर .....। नहीं बरसाता पानी ..... नहीं बरसाता जाने क्यों?

(नगाड़े का स्वर) ढा ढा ढा ढा ऽ ऽ ऽ ढा ढा ढा ढा ऽ ऽ ऽ

(सभी पात्र जो बादलों को निहार रहे हैं कुदाली आदि से ज़मीन को खोदते हुए मिट्टी को उठाने का अभिनय, परेशानी का अभिनय करते हुए देवता के समक्ष नतमस्तक होते हुए) कुदाली आदि किनारे पर रखेंगे और पीछे मुड़कर घड़े लेकर आएंगे, राख बदन पर मलेंगे, सभी पुरुष पात्र नंगे शरीर, केवल धोती पहने, राख मली देह, हाथ में खाली घड़े लेकर बजाते हुए, धरती में लोटते हुए देवता के समक्ष गुहार लगाएंगे।)

गुहार गीत :–

कालिए इत्ते पाणी जो पिटे
बौल्द त्रेहाए हाड़ी सूखे
भर पाणिए भर
हाड़े मामा हाड़े ऽऽ ऽ

नेपथ्य (गीत चलेगा, गीत के अनुसार अभिनय) भू– पाणी लोकगीत चलेगा, उसी गीत पर अभिनय)

(नर्तकों का प्रस्थान)

– दूसरा दृश्य –

राजा अपने प्रकोष्ठ में चिन्ता से इधर–उधर आ जा रहा है, उसकी बेचैनी उसके हाव–भाव से झलक रही है (लाहुली राज–पुरुषों के पहनावे में) (तभी प्रहरी का प्रवेश)

नेपथ्य से गीत का स्वर (ए घूषे री पाणू ङाणा शूकारा गेयी जे
(ए कूला शूकी मूरण शूकी पाणी ना ए टीपू जे)

हिन्दी अनुवाद :– सूख गए नहर व जल स्रोत एक बूंद न पानी की/सूख गए नहर व जल स्रोत एक बूंद न पानी की।

प्रहरी – महाराज आचार्य पधारे हैं।

(गीत का स्वर धीमा हो जाएगा परंतु चलता रहेगा)

राजा – तुरंत हाज़िर होने के लिए कहो।

नेपथ्य :– सूख गई जल अभाव से कृषि भूमि घुषाल की
सूख गए नहर व जल स्रोत, एक बूंद न पानी की

(प्रहरी के साथ आचार्य का प्रवेश)

राजा – आचार्य, कोई तो उपाय होगा इस समस्या का, चारों ओर हाहाकार मचा है, खेतों में फसलें सूख गई हैं, धरती फट पड़ी है, जाने ईश्वर की क्या इच्छा है।

आचार्य – महाराज, राज्य के अन्य हिस्सों से भी अकाल से मरने वालों के समाचार निरंतर आ रहे हैं। लोग भूख प्यास से त्राहि–त्राहि कर रहे हैं। सीमित जल संसाधन सूखते जा रहे हैं इसका निराकरण कैसे किया जाए, साधु महात्माओं से परामर्श लिया जाए तो.....।

राजा – हां इस आपदा को हल करने का कोई तो उपाय करना ही होगा, सिद्ध महात्मा को सादर महल में आमन्त्रित किया जाए।

प्रहरी जाता है राजा और आचार्य अपना–अपना स्थान ग्रहण करेंगे।

आचार्य – महाराज बड़ी विकट स्थिति है, प्रतिदिन कहीं न कहीं से भूख–प्यास से मरने की सूचनाएं मिल रही हैं, जनता में रोष है (और तभी प्रहरी का प्रवेश)

प्रहरी – महाराज सिद्ध महात्मा पधार चुके हैं।

साधू – महाराज की जय हो।
राजा – आइए, आइए स्थान ग्रहण कीजिए – श्रीमान इस संकट से तो आप भली भांति परिचित होंगे। कोई उपाय सूझ नहीं रहा, दूसरे राज्यों से सहायता की मांग की, परंतु वहां भी दशा शोचनीय होती जा रही है, अब आप ही कोई उपाय बताएं। त्राहि–त्राहि कर रही जनता कहीं बगावत न कर दे और पड़ोसी राज्यों से हमलों की आशंका भी बढ़ती जा रही है, (वहीं गीत नेपथ्य से चलता रहेगा धीरे–धीरे) अब आप ही से कुछ आस बंधी है श्रीमान।
नेपथ्य गीत – ए चम्बे आये ऊदेटु रोउड़ा राणे री प्रौढ़ी जे
ए चम्बे आए ऊदेटु रोउड़ा पोथी पातिरी हेरी जे
आया था चम्बा से एक साधू अवधूत तभी
बतलाया उपाय उसी ने पोथी पत्री देख तभी।
साधू – (पोथी निकालेगा, हाथ पर कुछ गणना करेगा) सोचेगा (राजा चिंतित सा टहलेगा)
नेपथ्य गीत – ए पातीरी अन्दूरा जे बूरी प्राशणा भूयी जे
ए पातीरी अन्दूरा जे मानुष बाटा लोड़ी जे
पोथी पत्री देख साधू की भृकुटी तनी
ये भूमि तो चाहती है किसी मनुष्य की बलि
(नेपथ्य से गीत चलेगा, हिन्दी अनुवाद ओवरलैप करेगा)
साधू – महाराज पत्री में ..... पत्री में तो ..... नहीं ..... कुछ नहीं .....
राजा– अरे कहिए ..... कुछ तो कह रहे थे आप।
आचार्य – कहिए महात्मन, भय न कीजिए, क्या कुछ ऐसा उपाय है जो दुर्लभ है।
राजा – अपनी प्रजा की रक्षा के लिए कोई भी उपाय दुर्लभ नहीं होगा, कहिए भय न कीजिए।
साधू – महाराज, पानी के लिए (थोड़ा रुककर) किसी प्राणी की बलि का योग बन रहा है (सोचते हुए पत्री के पृष्ठ बदलते हुए)
राजा – बलि? .....
साधू – कुछ दिन दीजिए महाराज, गणना में कुछ समय लगेगा।
राजा– ठीक है श्रीमान परंतु ज़रा शीघ्रता से प्रयत्न करें।
(दोनों का प्रस्थान)
राजदरबारी भयभीत थे, मौत का साया सभी पे था।
अपने सर से बला टले उन सभी ने ठान लिया था
खोजा तब मिलकर ऐसा था उपाय कि
सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।
नेपथ्य – ए ऊधो मामा टीटू मैटा मानासूबा कीती जे
ए बाटा लोड़ी बाटा लोड़ी राघु राणे री घारे जे।
(टीटू मैटा की कुटिल बुद्धि ने घोर रचा षड़यंत्र है)
(हे राजन तुम्हारे ही घर से बलि अभीष्ट है)।
षड़यंत्र – (षड़यंत्र दिखाने के लिए षड़यंत्र की ध्वनि नेपथ्य से, मंत्री व एक और दरबारी साधू से षड़यंत्र करेंगे और उपाय बताने के लिए कहेंगे, सब अभिनीत होता रहेगा)
साधू का आगमन एक ओर से, दूसरी ओर दरबार में राजा चिंतित मुद्रा में टहलते हुए प्रवेश।
साधू – महाराज की जय हो।
राजा– प्रणाम! श्रीमान कहिए क्या उपाय ढूंढा है आपने।
साधू – महाराज उपाय तो है परंतु .....
राजा– कहिए कहिए भय न कीजिए .....
साधू – महाराज!

महाराज यदि आप चाहते हैं अपने और राज्य के सबके प्राणों की रक्षा हो तो (थोड़ा रुककर) राजघराने के ही किसी प्रिय प्राणी की बलि देनी होगी, तभी राज्य पर आए इस सूखे व अकाल के संकट से छुटकारा पाया जा सकता है।

राजा – (मुंह खुला का खुला) क्या ..... क्या कहा आपने ..... बलि ..... राजघराने के किसी प्रिय प्राणी की ..... ये ..... ये.....

साधू – यही ..... एक मात्र उपाय है महाराज! यदि आप न चाहते हों ..... तो

(साधू का प्रस्थन)

(थोड़ा संयत होकर खुद को संभालेगा, उठेगा)

राजा – (ताली बजाएगा) – प्रहरी हाज़िर हो।

प्रहरी – जी महाराज।

राजा– जाओ मंत्री परिषद के सभी मंत्रियों को सूचना दो, शीघ्रातिशीघ्र पहुंचने का हुकम सुनाओ। (राजा एक तरफ से, प्रहरी दूसरी तरफ से जाएगा) (राजा का फिर से प्रवेश)

मंत्री – (तीन पात्र एक साथ प्रवेश) – महाराज की जय हो। आपने असमय याद किया महाराज क्या कोई विशेष बात है?

राजा – असमय बुलाने का एक विशेष प्रायोजन है। एक सिद्ध महात्मा ने उपाय खोज लिया है। परंतु ..... इतनी कठिन स्थिति है कि ..... कि ..... निर्णय .....।

मंत्री – महाराज! यदि उपाय मिल गया है तो इसमें निर्णय लेने में विलम्ब क्यों?

राजा– विलम्ब का कारण ही उपाय में छिपा है ..... इसी कारण ..... आप सबको बुला भेजा है। हम आपकी राय चाहते हैं ..... और ..... वह उपाय।

नेपथ्य :– राजा ने तब कह सुनाया जो कुछ था साधू ने कहा
बलि मांगती मानुष की, धरती, बेबस राणा ने था कहा।
कैसा क्षण था?
कैसी घड़ी थी?
इक मानुष की बलिगाथा की कथा थी आकार ले रही।

सभी एक साथ– महाराज। ये आप क्या कह रहे हैं, बलि? वो भी राजघराने के किसी सदस्य की?

राजा– हम गहरी चिंता में हैं, हम जानते हैं ये अत्यन्त कठिन परीक्षा की घड़ी है, परंतु इसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं है हमारे पास।

नेपथ्य से एक बार फिर – (षड़यंत्र) – ऊधो मामा टीटू मैटा मानासूबा कीती जे .....
बाटा लोड़ी बाटा लोड़ी राघु राणे री घारे जे

मंत्री – महाराज यदि ये सत्य है तो क्या इस पर अमल किया जाना उचित होगा?
क्या आपको मालूम है कि यदि इसे लागू करना हुआ तो बलि किसकी दी जाएगी?

राजा – इसी समस्या के समाधान के लिए हमने आप सभी को यहां बुलाया है। आप सभी अनुभवी हैं, समझदार हैं आप हमें बताएं हम इस दिशा में कैसे कर्तव्य पालन करें।

मंत्री – महाराज, यदि उपाय किसी भी व्यक्ति की बलि देने का होता तो इस पर हम अपनी राय बेझिझक दे सकते थे परंतु .....

आचार्य – आप उचित ही कह रहे हैं, ऐसी स्थिति में हम स्वयं को भी प्रस्तुत कर सकते थे परंतु ये ऐसा विषय है जो सीधा आपसे सम्बद्ध है हमारा सुझाव उचित नहीं होगा।

मंत्री – महाराज यह अत्यधिक संवेदनशील प्रस्ताव है जिसका निर्णय आप अपने आप राजपरिवार के बीच ही ले जाकर सुलझा सकते हैं। महाराज मेरे विचार में आपको इस विषय में एक बार फिर सोचना चाहिए।

राजा – संभवतः आप सब उचित ही कह रहे हैं हमें इस मसले को महल में ही रखना होगा। परंतु ये भ्रम नहीं है, हम इस उपाय पर अमल करें यही विधि की इच्छा है और कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं, सिद्ध महात्मा ने भी अपनी असमर्थता जताई है तो अब यही एकमात्र उपाय है हमें ...।

आप सब हमें अकेला छोड़ दें। (सब जाते हैं)
कितने ही दिन बीत गए
रातें बीत गई कितनी
लोग पलायन करने लगे
नगरी होने लगी खाली (तृषित मनुष्यों और पशुओ का क्रन्दन)
अपने प्रकोष्ठ में अकेला राजा घूम रहा है, त्राहि–त्राहि करती प्रजा की पुकार नेपथ्य से चलती रहेगी।
(लोकगीत भी ओवरलैप करता नेपथ्य में चलता रहेगा)
शेती लाड़ा बाटा देउंले थाचा कूणू पारेला
काड़ी कूती बाटा देउंले प्रौढ़ी कुणू पारेला
हिन्दी अनुवाद – दूंगा बलि लाल मेंढे की कैसे होगी रक्षा रेवड़ की।
दूंगा बलि काली कुतिया की रक्षा कौन करेगा द्वार की।
(नेपथ्य से लोकगीत चलेगा हिन्दी अनुवाद ओवरलैप करेगा)
नेपथ्य – मां ..... मां ..... पानी ..... पानी..... लाई बेटा ..... मेरे .....
(जानवरों की आवाज़ें) (सब ओवरलैप करेंगी) मां ..... पानी ..... पा ..... नी.....।
''घूंघरू टीका बाटा देउंले रासी ए कुणू कामेला
बंसरी देई बाटा देउंले चम्बा कुणू ब्यायेला
ए ऊधो मामा टीटू मैटा मानासूबा कीति जे
ए ग्रांई याना घूषाड़ा कूला फेरूणे जाणा जे।
हिन्दी अनुवाद – दूंगा बलि युवा कुमार की राजकाज सौंपूंगा किसको
दूंगा बलि राजकन्या की चम्बा में ब्याहूंगा किसको।
(नेपथ्य से गीत चलता रहेगा हिन्दी अनुवाद ओवरलैप करता रहेगा)
(राजा का प्रस्थान, रानी के प्रकोष्ठ में प्रकाश)

तृतीय दृश्य

(राजकुमार घूंघर व राजकुमारी बंसरी का दौड़ते हुए प्रवेश)
दोनों – रानी मां ..... रानी मां .....
(रानी का प्रकोष्ठ से मंच पर प्रवेश ..... फूलों की टोकरी लेकर दूसरी ओर से प्रहरी का प्रवेश रानी हार गूंथेगी)
घूंघर – देखो रानी मां, देई खेलते–खेलते दूर तक चली जाती है ..... ओ ऽ उधर गौशाला तक। इतनी दूर हम कैसे खोजेंगे?
रानी – (देखते हुए) क्यों बिटिया, क्यों चली जाती हैं आप वहां तक, यहां महल के आस पास ही खेला कीजिए।
देई – मां ..... वो मैं काका से कुछ पूछ रही थी।
रानी – (लाड़ करते हुए) क्या पूछ रही थी हमारी बिटिया?
देई – मां ..... वो बछड़े को दूध नहीं पीने दे रहे थे और वो ..... न, पीने के लिए मचल रहा था ..... हमने उनसे कहा भी ..... पर काका नहीं माने।
घूंघर – देखो रानी मां (चिढ़ाते हुए) यूं ही परेशान करती रहती है काका को। इतना भी नहीं समझती कि सारा दूध बछड़ा पी जाएगा तो हम क्या पिएंगे?
देई – पर क्यों रानी मां ..... वो ज्यादा दूध क्यों नहीं पी सकता?
रानी – ओह! (सोचते हुए) हार नीचे रख कर बेटी को पकड़ते हुए – बहुत दयालू है हमारी बिटिया। इतना नहीं सोचते बेटी।
घूंघर – ये पागल है रानी मां, ठीक से खेलती भी नहीं।
देई – क्या? ..... आपने हमें पागल कहा? (उसके पीछे भागेगी, घूंघर चिढ़ाएगा, भाग जाएगा)

रानी – अरे ऽऽ रे ऽऽ रे ऽऽ ओ ये बच्चे भी न (प्यार से देखेगी, ममतापूर्ण अभिनय, गूंथे हार लेकर बाहर निकल जाएगी)
राजा का दरबार
(रानी के निकलते ही राजा का प्रवेश)
राजा – प्रहरी (आवाज़ देगा)
प्रहरी – हुकम महाराज।
राजा – प्रहरी, रानी की अभिन्न सखी दिव्या को संदेश भेजो कि शीघ्रातिशीघ्र दरबार में हाज़िर हो।
नेपथ्य – राजा है चिन्तातुर
कुछ भी नहीं रहा है सूझ
क्या करे वो क्या न करे
किस बला का है ये कुसूर
दिव्या का प्रवेश
दिव्या – राणा की जाय हो
राणा – आओ..... आओ..... दिव्या (चिन्ताग्रस्त)
दिव्या – असमय बुलाने का क्या प्रयोजन है, ये समय तो रानी के साथ मंदिर जाने का है ..... (हाथ में ली थाल को देखते हुए) देखिए हम भी ..... पूजा का थाल भी साथ ही ले आए।
राजा – मंदिर .....
दिव्या – जी हां मंदिर, अकाल की स्थिति से चिंतित महारानी कई दिनों से उपवास पर है।
राजा – क्या? रानी उपवास रखे हुए है ..... (चिंता व ग्लानि के भाव)
दिव्या – महाराज, आप भी तो इस दशा से चिंतित हैं (रुककर) निसंदेह ये चिन्ता का विषय है ..... परंतु .....।
राजा – दिव्या ..... तुम ठीक कह रही हो, प्रजा के जीवन की रक्षा का भार है हम पर और हम कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं।
दिव्या – अन्य राज्यों से जो सहायता की मांग की थी उसका क्या हुआ?
राजा – सब उपाय कर लिए हैं अन्य राज्यों से पानीकी आस तो कम है ये भी आशंका है कि इस स्थिति का लाभ उठाकर वे आक्रमण ही न कर दें इधर (थोड़ा रुककर, गला साफ करने का अभिनय) असमय बुलाने का एक कारण है, चम्बा से आए एक महात्मा ने यूं एक उपाय सुझा दिया है..... वो .....
दिव्या – (एकाएक घूमकर) (खुशी में) – क्या कह रहे हैं महाराज, यदि उपाय है तो आप तत्काल उस पर अमल क्यों नहीं करते?
राजा – परंतु उपाय इतना सरल भी तो नहीं है।
दिव्या – सरल नहीं है? ..... पर है क्या?
राजा – दिव्या ..... वो .....
नेपथ्य – राजा ने तब कह सुनाया जो कुछ था साधू ने कहा
बलि मांगती मानुष की धरती बेबस राजा ने था कहा।
नेपथ्य – बाटा लोड़ी बाटा लोड़ी राघु राणे री घारे जे।
(हे राजन तुम्हारे ही घर से बलि अभीष्ट है।) (गीत ओवरलैप करेगा)
दिव्या – (घबराकर चिन्ताग्रस्त मुद्रा में हाथ में पकड़ा थाल छूट जाएगा)
थाल के गिरने का स्वर
नेपथ्य – टूटा नहीं वो थाल था
छूट गया वो इक क्षण था
छुपा हुआ उस क्षण विशेष में
मौत का इक पैगाम था। (आलाप के साथ संगीतात्मक संवाद)

दिव्या – क्या .....? ये क्या कह रहे हैं आप ..... बलि राजघराने के किसी सदस्य की (डर और शक, आशा–निराशा के भाव) ये कैसा उपहास?
राजा – देवी। ..... हम उपहास नहीं कर रहे हैं दैव की यही इच्छा है।
दिव्या – तो ..... (घबराकर) आपने क्या निर्णय लिया है?
राजा – हमें ..... हमें तो कुछ सूझ ही नहीं रहा है ..... इधर हमें यह भी भय है कि कहीं ये समाचार हमारे वृद्ध माता–पिता तक न पहुंचे, इस उम्र में हम उन्हें कोई पीड़ा नहीं पहुंचाना चाहते ..... टीका घूंघर हमारा उत्तराधिकारी – देई बंसरी को चम्बा ब्याहना हमारे राज्य के लिए ..... . (दिव्या बीच में ही बात काट देगी ..... शंकाग्रस्त घबराए स्वरों में)
दिव्या – तो? (आशंकित स्वर) ..... तो क्या ..... रानी नहीं ..... नहीं ..... ये ..... ये ..... ये नहीं हो सकता ..... ये कैसे? (कानों पे हाथ रखे चीखेगी) (विचलित सी) ओह! (राजा की ओर एक टक देखते हुए, फिर भाव बदलते हुए थोड़ा संयत होकर) आप हमसे क्या चाहते हैं महाराज (थोड़ा गुस्से में)
राजा – (लज्जित सा) देखो ..... दिव्या हमें गलत न समझना ..... हम .....
दिव्या – (दृढ़ स्वर में करुणा भी) महाराज! आप स्पष्ट कहें ..... हमसे क्या चाहते हैं?
राजा – वो .....आप..... (रुक, रुक कर) रानी से इस संबंध में .....
दिव्या – महाराणा – (लगभग रोते हुए, चरणों में बैठ जाएगी) ..... इतनी कठिन परीक्षा? ..... इतनी ..... कठोरता..... इतनी निष्ठुरता ..... हम ..... हम (विचलित सी) हम नहीं कर पाएंगे ..... नहीं ..... नहीं ..... ये .....ये पागलपन है ..... एक छलना है ये ..... ये भ्रम मात्र..... नहीं नहीं ..... क्यों एक भविष्यवाणी के लिए एक स्त्री की ..... आहुति देना चाहते हैं आप।
राजा – दिव्या ..... (समझाने बहलाने का भाव) देखो आज दरवारियों तक ये बात पहुंची है कल अगर ये बात जनता तक ..... (एकदम बात बदलना) जानती हो न ..... हमारी साख मिट्टी में मिल जाएगी।
दिव्या – ये ..... ये कोई न्याय नहीं हुआ? देई, टीका ..... आप समझ रहे हैं न इसका अर्थ ... . इसका परिणाम ..... अभी तो देई के दूध के दांत भी ..... (रोते हुए)..... ये ..... ये अन्याय है ..... महाराज ..... तनिक सोचिए .....
राजा – (हारकर) दिव्या – कैसी विचित्र घड़ी है .... कैसा अन्तर्द्वन्द्व ..... इस स्थिति को स्वीकारता हूं तो ..... तो ..... नहीं स्वीकारता हूं तो जनता की घृणा व पलायन ..... जनता से ही तो राज्य है दिव्या अन्यथा ..... तुम समझ रही हो न ..... दिव्या ..... दिव्या (लगभग बल पूर्वक बात मनवाने का प्रयत्न करेगा) देखो ..... ये काम ..... ये काम तो तुम्हें करना ही होगा ..... सौगन्ध है तुम्हें महारानी की .....
(दिव्या रोते हुए, विवशता का अभिनय, बेचैनी का अभिनय) चीखते हुए .... नहीं ..... नहीं, महाराज ..... इतनी कठिन परीक्षा ..... न लीजिए (हारकर बैठ जाएगी)
दिव्या – ये कैसा उपाय? ..... ये कैसा आसान सा समाधान (व्यंग्य से)
राजा – (बहलाता फुसलाता हुआ) देखो .... देखो ..... बस एक बार रानी को किसी तरह ..... बलि स्थल तक ..... (राजा का प्रस्थान)
दिव्या – (रोते हुए बेचैनी) मैं ..... मैं..... कैसे ..... (पागलों की अवस्था में घूमेगी और चिल्लाएगी)

ओ SS गूंगी बहरी अंधी संतानों
ये कोई उपाय नहीं है, नहीं है उपाय
ये ..... अन्याय है अन्याय है ये
(चिल्लाते भागते हुए दिव्या का प्रस्थान)

रानी का प्रकोष्ठ

(रानी का प्रवेश)
रानी – जाने दिव्या आज कहां रह गई। संभवतः ..... मंदिर के लिए पुष्प चुनने गई हो ..... बेचारी दिव्या। कितनी चिन्तित रहती है, हमारे साथ जाने कैसा संबंध है उसका। कैसा भाग्य पाया है हमने, रानी मां व बहन की कमी कभी नहीं खली दिव्या के रहते।
(बाहर से बच्चों की आवाज़ें)
रानी मां ..... रानी मां ..... ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ
घूंघर – देखो रानी मां ..... हम भण्डारगृह में खेल रहे थे ..... वहां हमें ये मिला। ..... देखो ..... देखो ..... इसमें कुछ लिखा है और इस बक्से में देखो कैसे आभूषण हैं (रानी उनके हाथ से पुलिन्दा ले लेगी)
देई – मां ..... मां ..... क्या लिखा है इसमें (घूंघर चिढ़ाएगा)
घूंघर – मां मां (नकल करेगा देई की) इसमें क्या लिखा है?
देई – देखो न रानी मां ..... घूंघर हमें फिर चिढ़ा रहा है ..... (उसे मारने के लिए पीछे भागेगी) (दोनों का प्रस्थान रानी अपने से बात करेगी)
रानी – (स्वयं से) ..... कैसे बीत जाता है समय ..... (खुशी से साफ करते हुए) ..... अभी कल ही की बात लगती है ..... (बाक्स खोलेगी, गहने देखेगी) (दिव्या का धीरे–धीरे प्रवेश)
(रानी की दृष्टि दिव्या पर पड़ेगी)
रानी – अरे दिव्या ..... तुम कब आई? ..... देखो न (उत्साहित होकर) हमारे घुरे गीतों की इन पांडुलिपियों पर कैसी धूल जम गई है और और ये हमारी मां के समय के आभूषण। कैसे बीत गए वो सुनहरे क्षण (खुश होकर) याद है ..... दिव्या ..... कितना अभ्यास करती थीं हम दोनों, हमारे ब्याह के बाद घुरे गायकों के साथ कितना समय बिताती थीं हम (दिव्या बेचैन सी) 16–17–17 घंटे स्मरण है दिव्या ..... एक रात ..... (दिव्या की ओर देखकर) क्या बात है दिव्या ..... तुम्हारा ध्यान नहीं है ..... हम कुछ कह रहे हैं।
दिव्या – हां महारानी – हां ..... सुन रहे हैं हम ..... वो हम ..... (बेचैन सी)
रानी (प्यार से) आज हमारी प्रिय सखी को क्या हो गया है ..... कहीं .....
दिव्या – महारानी ..... वो ..... क्यों ठिठोली कर रही हैं .....
रानी – तो फिर आप हमारी बात का उत्तर क्यों नहीं देती ..... दिव्या, (आभूषण पहन कर देखते हुए) देखो न ..... ये आभूषण मात्र नहीं है दिव्या ..... इनमें मेरी मां का प्यार है (उत्साहित होकर) देखो ..... अब हम फिर से सीखेंगे संगीत ..... (सोचते हुए खोए–खोए से भाव) जब हमारी बेटी का ब्याह होगा ..... हमारे बेटे घूंघर के लिए बहू लाएंगे .... तब हम खूब नाचेंगे गाएंगे ..... ऐसा माहौल बनाएंगे (पूरे स्टेज पर घूमती झूमती हुई) ..... हां ऐसा ..... कि सारे पहाड़ी राज्यों में बरसों इसकी चर्चा होती रहे ..... (एकाएक चुप) ओह ! पहले इस अकाल से तो ..... (हाथ जोड़कर) हे देवी मां कृपा करो ..... बरसो, कुछ तो बरसो। जिस रोज़ पानी बरसेगा न दिव्या ..... उस रोज़ .. ... उस रोज़ ..... हम खूब गाएंगे ..... ऐसी खुशी मनाएंगे कि .....।
राजकुमारी – पकड़ो ..... हम यहां हैं .....
राजकुमार ढूंढने का उपक्रम, रानी इधर उधर घूमेगी, भाव बदलेगी, बच्चों को देखेगी (प्रेम करुणा के भाव) बच्चे एक दूसरे से लड़ेंगे .....
राजकुमारी – मां ..... देखो न, घूंघर अपनी पट्टी हल्की बांधता है पट्टी में से देखता है।
कुमार – नहीं रानी मां ..... हमने नहीं देखा सच्ची तुम्हारी सौगन्ध।
राजकुमारी – चलो हटो, मां की झूठी सौगन्ध खाते हो, पता है न, झूठी सौगन्ध खाओगे तो मां मर जाएगी।
राजकुमार – नहीं तुम झूठ बोलती हो कसम खाने से भला कैसे मां मरेगी ..... मैं अपनी मां को नहीं मरने दूंगा ..... मैं .....

राजकुमारी – तो मत खाया करो मां की सौगन्ध ..... (मुंह बनाते हुए) ..... तब पता चलेगा जब दूसरी मां आएगी और खूब मारेगी।
दिव्या – चुप हो जाओ (रोते हुए) भगवान के लिए चुप हो जाओ (दोनों को गले लगाकर रोएगी) ऐसा मत कहो ..... मत कहो ऐसा ..... (इसी बीच रानी का आगमन, हैरानी से उन्हें देखेगी)
दिव्या – महारानी की जय हो।
मैं क्या देख रही हूं क्या हो रहा है यहां (आंसू पोंछ कर दिव्या बच्चों से अलग होगी)
रानी – क्या बात है दिव्या तुम रो क्यो रही हो। जाओ बच्चो बाग में जाकर खेलो, देखओ अब लड़ना नहीं .....।
राजकुमारी – परंतु मासी मां ..... आप रोई क्यों? आप चिंता न करें अब हम नहीं लड़ेंगे। हम आपकी सौगन्ध भी नहीं खाएंगे, सच्ची आपकी सौगन्ध।
दिव्या – (हंसेंगी दोनों) देखो फिर सौगन्ध खाई। अब जाओ।
रानी – क्या बात है दिव्या, तुम रो क्यों रही हो।
दिव्या – महारानी वो ..... वो हमें आपसे इसी संबंध में कुछ कहना है।
दिव्या – वो ..... (भाव छुपाते हुए) वो ..... महाराज भी इस दशा पर बेहद चिंता में हैं। सुना है कोई महात्मा चम्बा से पधारे हैं और उन्होंने सूखे के संकट से उबरने का कोई उपाय खोजा है।
रानी – प्रसन्न होकर ..... क्या? उपाय मिल गया है ..... ओ देवी मां कितनी दयालू हो तुम ..... हमारे उपवासों का ही परिणाम है ये दिव्या। देखा मां ..... ने हमारी प्रार्थना सुन ली .... है न दिव्या।
दिव्या – हां ..... हां ..... हां ..... महारानी।
रानी – दिव्या । तुम ..... तुम ..... आज तुम्हारा व्यवहार कुछ अजीब सा है ..... क्यों? अच्छा उपाय तो बताओ?
दिव्या – नहीं नहीं रानी ..... हां ..... हां ..... वो (रुकरुक कर पूरा संवाद) महारानी साधू की भविष्यवाणी है कि .....(नेपथ्य से साधू की भविष्यवाणी)
रानी – बलि मनुष्य की? ..... ये कैसा उपाय?
दिव्या – महारानी ..... (गला खंखारकर, डरते हुए से) बलि राजघराने के ही किसी सदस्य की देनी होगी।
रानी – (आभूषण हाथ से छूट जाएंगे) ..... राजघराने .... से बलि?
हैरानी, चिंता डर के भाव एक एक करके .... आशंका का भाव ..... ये ..... ये क्या कह रही हो दिव्या?
दिव्या – हां ..... महारानी (रोते हुए करुण स्वरों में) .... यही सत्य है ..... महाराजा इसीलिए चिन्ताग्रस्त हैं।
रानी – ..... महाराजा..... ओह ..... कहां हैं ..... हमें उनसे शीघ्र मिलना चाहिए कहीं वे ..... नहीं नहीं ..... इस समय उन्हें हमारी आवश्यकता होगी हम ..... वो ..... (आशंका) ..... हमारे बच्चे? ..... नहीं नहीं .....
दिव्या – महारानी (रोकते हुए) ..... आप यहीं रुकिए ..... हमारी बात तनिक सुनिए (बेचैनी से) ..... वो ..... बच्चों की चिन्ता न करें .....
नेपथ्य – देंगे बलि युवा कुमार की राजकाज सौंपेंगे किसको
देंगे बलि राजकन्या की चम्बा में ब्याहेंगे किसको
(गीत भी धीमा–धीमा चलेगा)
रानी – ओह ! ठण्डी आह भरकर। हाथ जोड़कर बैठ जाएगी (चैन की सांस लेगी) (फिर एकाएक उठकर) तो कहीं राजन स्वयं .....
दिव्या – नहीं – नहीं रानी ..... राज्य का क्या होगा राजा नहीं ..... और (नज़रें बचाते हुए) ..... और महाराजा नहीं चाहते कि ये समाचार उनके वृद्ध माता–पिता तक पहुंचे इसलिए .....

रानी – इसलिए? (आशंका से इधर–उधर घूमती हुई ..... दिव्या को देखेगी) ..... क्या ..... ओह .. .. (समझने का अभिनय) तो इसका अर्थ हुआ ..... हम ..... (शून्य में ताकेगी)
दिव्या – (खुलकर रोते हुए) महारानी ..... (रानी शून्य में आंखों में आंसू हैरानी के भाव)
..... (दिव्या रानी को झकझोरेगी, रानी शून्य से लौटेगी, दिव्या को देख दोनों एक दूसरे के गले से लगकर खूब रोएंगी)

अंतिम दृश्य

(रानी का प्रकोष्ठ)
(बच्चों का दौड़ते हुए प्रवेश)
देई – रानी मां रानी मां देखो गौशाला में हमारी गौरी गाय नहीं है।
रानी – वहीं होगी बिटिया ..... कहां जाएगी? (प्रेम व करुणा दोनों)
देई – (रोते हुए) नहीं रानी मां ..... नहीं है ..... कहीं नहीं है।
रानी – काका से पूछा तुमने?
देई – हां रानी मां ..... वो हमको नहीं बताते ..... चलिए आप पूछिए न। पल्लू खींचेगी।
रानी – प्रहरी, गौशाला से काका को बुलाओ। (करुणा छिपाते, चिन्ताग्रस्त)
दिव्या – हमारी बिटिया इतनी दुखी क्यो होती है, अभी आ जाते हैं काका ..... अच्छा बताओ ..... (इतने में काका का प्रवेश)
काका – महारानी की जय हो,
रानी – काका ये देई क्या कह रही हैं, कहां हैं गउएं?
काका – वो ..... रानी मां ..... वो क्या है कि बहुत सी गउएं अब बूढ़ी हो गई हैं (रुककर) फिर गौशाला में बेकार गउओं का भला क्या काम? (चापलूस लहजे में) इसलिए उन्हें छोड़ दिया है रानी मां ..... और बिटिया की गौरी गाय भी दूध के लायक नहीं रह गई थी। भला ऐसी गउएं कब तक बंधी रहेंगी गौशाला में। काम बढ़ जाता है न सो उसे भी ..... देई बच्ची है अभी, समझती नहीं। दुधारू गाए आ जाएगी तो देई भी .....
(मार्मिक आलाप बांसुरी के साथ)
रानी – हां (आह भरकर) ठीक कहा आपने (व्यंग्य से) ..... बेकार गायों का गौशाला में भला क्या काम। दुधारू गायों की भला क्या कमी।
देई – रानी मां ..... (रोते हुए) ये क्या कह रही हैं आप?
रानी – मेरी बच्ची ..... (छाती से लगा लेगी) तुम अभी बच्ची हो (ठण्डी सांस लेकर) सच में .... अभी नहीं समझोगी ..... काका आप जाइए।
देई – रानी मां ..... (रोते हुए) ..... मां काका से कहिए ..... (काका के पीछे भागेगी) काका ..... काका ..... (रानी रोकेगी)
रानी – ओ मेरी बच्ची। ..... आओ ..... (रोते हुए) बहुत दिन गुज़रे तुम्हें लोरी नहीं सुनाई ..... चलो सो जाओ, आज मैं ..... अपनी बिटिया को एक कथा सुनाउंगी आओ ..... सो जाओ बेटी ..... घूंघर तुम भी सो जाओ। बच्चों को लिटाएगी दोनों लोरी गाएंगी। क्यों दिव्या ..... (आंसू भरी आंखो से) चलो न ..... आज..... आज आखरी बार अपने बच्चों को ..... (रोयेगी) (दिव्या भी रोयेगी) ..... (संभलकर आंसू पोंछ कर)
दिव्या – हंसुली वाली लोरी याद है न सखी। ..... (रोते स्वरों में) गाओ न .....
बच्चे सोयेंगे – गाना (रोते रोते गाएंगी)

''सच्चा बोले अम्मा ईजी हांसोली प्यारी कोदू गेयी जे
तेन्ढूणे हांसोली शागा चूंगूणे गेयी जे
हाका ए कीती री ए दानेटु, सारी शाग्वाड़ी तोपी जे
तेन्ढूणे हांसोली मेलूणे नई जे .....
सच्चा बोले रान्डा ए अम्मा हांसोली प्यारी मेलूणे नायी

तेन्ढूणे हांसोली लचा चारूणे गेयी जे।
राघु ए डोमा जे चोरी कारी लेयी जे .....''
(बच्चों के सोने पर)
रानी – ये कैसी अजब रात, कैसा सन्नाटा, कैसा विचित्र अहसास, कैसी विचित्र रात्री, कैसे उदास से वृक्ष

(संवाद के दौरान रानी पूरे मंच का प्रयोग करेगी)

ये क्या? मुझे कभी ऐसा विचित्र अनुभव नहीं हुआ? ओह! ये समय कैसी तीव्रगति से चल रहा है। हवा भी निश्चल है। ओ समय तनिक धीमी करो अपनी चाल, ओ हवाओ देखो, मेरी संतति तुम्हारे स्पर्श से कैसी निश्चिंत सोई है, ये हवाएं कल भी चलेंगी, रात्री कल भी यूं ही आएगी, ऐ चंदा तेरी चांदनी यूं ही फैलेगी कल भी .....

(दिव्या संवाद के अनूकूल अभिनय करती रहेगी)

(रोते हुए) देखो–देखो तनिक भर रूककर झांक लो, देख लो कैसे भोले मुख हैं इनके। (रूंधे स्वर में) देखो ..... कल मैं न हूंगी ..... पर तुम रोज होंगे ..... ए हवाओ कैसे छू कर निकल रही हो, मेरे बच्चों के तन से, (विक्षिप्त सी होकर) गालों को ..... बालों को ..... छूकर ..... कल भी आना। इनको छू कर चली आना मेरी जमीन पर, दे जाना एक हल्का सा स्पर्श मुझको ..... तब ..... तब ..... मैं छू लूंगी दूर से अपनी बिटिया का मुख ..... अपने लाल का मुख ..... तुम्हारे स्पर्श से। कल मेरी सीमा से दूर हो जाएंगे मेरे बच्चे। रोऊंगी धरती के भीतर जो कहीं तुम ..... (रोयेगी) कहो लाओगी न ..... (दिव्या पूरे दृश्य में केवल भावों से पीड़ा व्यक्त करेगी)

(दोनों एक दूसरे के गले लग जाएंगी, रोयेंगी नेपथ्य से कोरस चलेगा)

कोरस – रोती है ममता भीतर बाहर स्थिर एक लक्ष्य है
हाहाकार भीतर करता हृदय अशांत है।
बाहर विस्तृत ममता करती एक प्रखर नाद है
डोलती है मां मगर नारी का दृढ़ एक विचार है।

दिव्या के पास जाकर रानी कहेगी।

रानी – नश्वर देह का मोह न कर प्रिय न कर। मुझे धीरज से मर जाने दे (अविचलित सी होकर) देख ..... मेरे बच्चों का भार छोड़ जा रही हूं बहन। अपनी संतानों के साथ इन्हें भी मां सा प्यार देना सखी। देख ..... (बौखलाए स्वर में इधर–उधर बेचैनी से घूमेगी) जहां मुझे दबाएंगे वहां ..... वहां तू प्रतिमाह इसी तिथि को लाया करना मेरे बच्चों को ..... (रोते हुए) ..... लाएगी न .....। मुझे दबा देंगे वो लोग पर मेरी, आंखें जिन्दा रहेंगी। ..... जिन्दा रहेंगी सोती हुई भी ..... तलाशती रहेंगी सत्य। देखूंगी (आत्म विश्वास के साथ) हर बार जब–जब पेड़ों पर फूल खिलेंगे, जब–जब लौटेगी ऋतु ..... जब–जब होगी धरती पानी से लबालब मैं लौटूंगी तब–तब बार–बार, हर बार। (दिव्या उसे झिझोड़कर उसे गले लगाएगी दोनों रोएंगी)

ए रूपी याना राणी जे मेरी अरूजाना शूणी जे
ए मेणी बाटा देन्दा जे चूचू बारे नीसे राखी जे
गीत चलता रहेगा हिन्दी अनुवार ओवरलैप करेगा
''अरज सुनो मेरी तुम ओ धूषाल वासियो
दोगे बलि पर मेरी छाती को रखना बाहर,
शायद मेरे बच्चे पीना चाहे दूध आकर,
दफना देना मुझे तुम पर एक मेरी अर्ज सुनो
रखना मेरी आंखें बाहर देख सकूं कभी
आते जाते बच्चों को ..... मेरी अरज सुनो''

नेपथ्य – मंत्रोच्चारण – रानी को, बलिपूर्व पूजन के लिए बलि स्थल पर सादर उपस्थित किया जाए।

रानी दिव्या का हाथ धीरे–धीरे छुड़ाकर उठेगी, शून्य में ताकती, धीरे–धीरे बाहर निकल जाएगी। (नेपथ्य में मंत्रोच्चारण चलता रहेगा) लोकगीत की ओवरलैपिंग से मंत्रोच्चारण कम होता जाएगा।

नेपथ्य – रूपी राणी की जय हो। रूपी राणी की जाय हो। रूपी राणी अमर रहे (पानी बरसने/बहने का स्वर, खुशी व ढोल नगाड़ों के मिले जुले स्वर)

नेपथ्य – अब के जो बरसा पानी तो न रूक सका, न रूक सका बहता गया बहता ही जा रहा है (गीत धीमा–धीमा रहेगा)

दिव्या – घुटनों के बल बैठी रहेगी। (आक्रोश, पीड़ा, आंसू के भाव एक साथ हैरान सी ..... बेचैनी से इधर–उधर मंच पर विक्षिप्त सी अवस्था में घूमेगी, सुनने का अभिनय)

दिव्या – पानी ..... पानी ..... पानी (तीनों बार पानी का उच्चारण अलग–अलग तरह से करेगी स्वर व्यंग्यात्मक)

दिव्या – घुटनों के बल बैठेगी, (एक लम्बी चीख) नेपथ्य से गीत चलेगा।

नेपथ्य –

कहां रूकेगी जल की धारा
कहां बुझेगी मां की प्यास
बहती रहेगी जलधारा में
प्यासी ममता इक लिए आस

कोरस चीख को ओवरलैप करेगा।

जलधार नहीं
ये प्यास है
ये प्यास है
ये प्यास है
याद दिलाती इक प्यासी मां के बलिदानों की अमर याद है
जलधार नहीं – 2
ये प्यास है
ये प्यास है
ये प्यास है
इक चीत्कार है
इक विलाप है
इक चिंगारी है
हां ये केवल जलधोर नहीं, ये इक सवाल है, इक सवाल है, इक सवाल है।
(धीरे–धीरे धीमा होता जाएगा स्वर)

समाप्त

'एक स्त्री का व्यथा गीत' शीत मरुस्थल क्षेत्र में अकाल की स्थिति में पानी के लिए रूपी राणी की बलि दिए जाने की घटना पर आधारित है। प्रस्तुत नाटक का आधार स्रोत श्री सतीश लोप्पा के 'गीत अतीत' में संकलित घुरे गीत है। पूरा नाटक गीत को ध्यान में रखकर लिखा गया है। पहाड़ी क्षेत्रों में रानी की बलि दिए जाने की घटनाएं कुछ–कुछ अन्तर के साथ विद्यमान हैं। हमारा सवाल है– बलिदान को लेकर। उसी सवाल को यहां उठाने का प्रयत्न किया गया है। सवाल, सार्थक भी हो इसलिए हमने कुछ काल्पनिक पात्रों व घटनाओं को जोड़ा है। ये पात्र तथा घटनाएं उस सामंती सोच का विरोध करते हुए आम जनमानस तक ये सवाल पहुंचाने के लिए ज़रूरी हैं, जिनकी चेतना कुन्द है, हो गई है या सदियों से होती रही है।.....लेखक

लाहुल स्पीति के जन जातीय समुदायों का संक्षिप्त परिचय

– छेरिङ दोर्जे

लाहुल तथा स्पीति पश्चिमी हिमालय की उत्तुंग हिमाच्छादित शिखरों से घिरे मध्य हिमालय पर्वत खण्ड (Mid Himalaya) में दो अलग–अलग नदी घाटियां हैं। इन दोनों नदी घाटियों हैं का विशाल हिमालयी श्रृंखला (Great Himalayan Range) की बारा लाचा शिखर समूह (Massif) 19000 फुट, की दक्षिण–पूर्वी भुजा दीवार बन कर अलग करती हैं इसी शिखर समूह में सिंधु जलागम क्षेत्र के चार विशेष सहायक नदियों का उद्‌गम स्थान है। चन्द्र और भागा, जो आगे जा कर लाहुल के तान्दी नामक स्थान पर एक दूसरे से मिल कर चनाब नदी बन जाती हैं। पिति छु, (स्पीति नदी) सतलुज नदी की सहायक नदी और योनम छु लिंगती और जंस्कर के नदियों में मिल कर लद्‌दाख में नीमू के स्थान पर सिंधु नदी से मिलती है।

स्पीति :–

स्पीति घाटी की ऊंचाई समुद्र तल से 10,000 फुट से 23,000 फुट (शिला चोटी) के मध्य है। यहां संसार की सब से अधिक उंचाई पर स्थाई रूप से बसा गांव लङज़ा (उंचाई 13,700 फुट) है सम्पूर्ण घाटी शुष्क, वनस्पती वीहीन मरुस्थल, परन्तु प्राकृतिक स्वरूपों का एक अनूठा दृश्य लिए पश्चिमी तिब्बती भूसंरचना को दर्शाती है। भौगोलिक रूप से पश्चिमी तिब्बती भूखण्डीय भाग होने के कारण यहां वर्षा और बर्फ दोनों बरसने में अधिक कंजूसी बरतते हैं। स्पीति की भौगोलिक स्थिति भी सिंधु–सतलुज जुदा करने वाली रेखा (divide) पर है। पिन और लालुङ घाटियां स्पीति की अन्य दिशाओं की सहायक नदियों की भीतरी बस्तियां है। छ़रब और उपरली पाराछु घाटियों की स्थिति अधिक उंचाई के कारण जनशून्य है। छ़रब नदी का जल बारालाचा की ओर से आती योनम नदी से मिल कर आगे ज़ंस्कर लुङनग छु के साथ पुरणी के स्थान में मिल जाती है। पारा छु अर्थात पारा नदी का उद्‌गम और उपरला भू–भाग जम्मू कश्मीर के रुबशो क्षेत्र की सीमा से लगते नीचे वनला के समीप तिब्बत के छुरुव और सुङखिल घाटी होते हुए फिर लबचे़ पर्वत भुजा के नीचे स्पीति में प्रवेश कर सुमदो के स्थान पर स्पीति छु से मिल कर आगे सतलुज नदी में जा गिरती है। अतः पारा छु अन्तर्राष्ट्रीय सहायक नदी गिनी जाएगी।

ग्यारहवीं शताब्दी में निर्मित लालुङ सेर–ल्हखङ (स्वर्ण मन्दिर) के भित्ति लेख में स्पीति को ची–दे (स्पयी–सदे) अर्थात 'संयुक्त प्रान्त' कहा गया है। अनुमानतः यही कालान्तर में पिति या स्पीति (स्पी–ति) हो गया होगा।

लाहुल :–

जैसा कि ऊपर कह चुके हैं कि लाहुल चनाब नदी और उस के दो उपरली शाखा नदियों चन्द्र और भागा की घाटियों का सामूहिक नाम है जो बारा लाचा से तिन्दी तक फैला हुआ है। सम्पूर्ण घाटी ऊंची–ऊंची हिममण्डित चोटियों से घिरी और विशाल चट्‌टानी पहाड़ी दीवारों के मध्य संकरी और गहरी खाइनुमा घाटियां हैं। घाटी की ऊंचाई समुद्र तल से 7000 फुट से ले कर 21,280 फुट (मुलकीला) चोटी है। घाटी की निम्न भागों में कायल, देवदार, रई और तोसा आदि वृक्षों का सुन्दर वन है परन्तु ऊंचे क्षेत्रों में केवल देवीदार वृक्षों के छितरे वन ही देखने को मिलता है। यहां की जलवायु शुष्क और ठंडक लिए है। और शीतकाल में वर्फ से ढक जाने के पश्चात ठंड का प्रकोप तीव्रतर हो जाता है। ग्रीष्मकाल (भारत वर्ष में बरसात) में बहुत कम वर्षा होती है परन्तु शीतकाल में उत्तर ध्रुवीय हवाएं बर्फ ले कर आती हैं। शीतकाल में अधिक बर्फ गिरने के कारण बाहर से घाटी में आने के रास्ते (ऊंची जोत अथवा दर्रा) पांच–छह मास के लिए बन्द हो जाते हैं। इन दिनों घाटियों के भीतर भी आवाजाही रुक सी जाती है।

चन्द्र और भागा घाटियों को मध्य लाहुल पर्वत श्रृंखला दो अलग–अलग घाटियों में बांटती है। स्थानीय नाम–चन्द्र घाटी को तिनन और भागा घाटी को पुनन या गाहर और चनाव घाटी को मनचद, मेनलोग और पटन है। अंग्रेज़ी राज के समय लाहुल के दो भाग थे। उपरली भाग को

ब्रिटिश लाहुल और निम्न भाग जिस में थरोट से तिन्दी तक क्षेत्र पड़ता है, उसे चम्बा लाहुल कहते थे। हिमाचल प्रदेश के पूर्ण राजत्व प्राप्ति के पश्चात दोनों लाहुल एक प्रशासनिक अधिकारी, जिलाधीश लाहुल–स्पीति के अधीन कर दिया गया। मयाड़ घाटी जिसे पतनम क्षेत्र भी कहते हैं और चोखंग नाला घाटी, लाहुल घाटी के दो सहायक घाटियां हैं जो उत्तर दिशा के पर्वत श्रृंखला विशाल हिमालय के मध्य के संकरी हिमनद घाटियां हैं।

लाहुल के नामकरण को ले कर भिन्न–भिन्न विचार धाराएं इतिहासकारों में है। कुछ लोगों का तर्क है कि लाहुल भोटी भाषा ल्हयुल अर्थात देवभूमि का अपभ्रंश है और कुछ लोग इसे ल्होयुल मानते हैं जिस का रूपान्तर भोटी भाषा में दक्षिणी प्रदेश है क्योंकि लाहुल लद्दाख से दक्षिण दिशा की ओर पड़ता है। परन्तु प्राचीन लद्दाखी और तिब्बती लेखों में लाहुल को गरजा और गरशा कहा गया है। डि–गुङ सम्प्रदाय (तिब्बती बौद धर्म) के संस्थापक क्योबपा जिगतेन गोम्पो (13वीं शताब्दी) ने लाहुल के दो महान तीर्थ–डिलबु–रि (श्री घंटा पर्वत– Bell Mount) और त्रिलोकनाथ मन्दिर के तीर्थ परिचय (ति–ग्नस–ब्शद) लिखा है जिस में लाहुल को गरजा ही कहा गया है। दो पुर्तगाली जेज्युट पादरी, फ्रानसिस्को अज़िवेदो और आलीवीर ने चपरंग (पश्चिमी तिब्बत) से वर्ष 1631 ई. में वापिस आगरा जाने के लिए रुपशो, लद्दाख और लाहुल के मार्ग को चुना था। उन्होंने भी अपनी यात्रा वर्णन में लाहुल को करजा (Carja) कहा है। इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि लाहुल भोटी शब्द का अपभ्रंश 'ल्हायुल या ल्होयुल' नहीं हो सकता। प्रसिद्ध चीनी यात्री भिक्षु यू–हान संग (7वीं शताब्दी) ने अपनी यात्रावली (सि–यु–कि) में एक प्रदेश लो–यु–लो का ज़िक्र किया है जिस की स्थिति कु–ला–टा वर्तमान कुल्लू से सेंकड़ों ली (चीनी मील) की दूरी पर है, परन्तु लाहुल की दूरी कुल्लू से इतनी अधिक नहीं है। चीनी भिक्षु ने अवश्य ही लाहुल का नहीं बल्कि लीयुल का ज़िक्र किया होगा। पूर्वी तुर्किस्तान और सिंकियांग को तिब्बती लेख आदि में लीयुल कहा गया है जिसकी दूरी कुल्लू से सैंकड़ों दूर बताई गई है। इस से भी पुष्टि हो जाती है कि यु–वान–चंग का लो–यू–लो लाहुल नहीं बल्कि लीयुल (सिंकियांग) हो सकता है। इस क्षेत्र का नाम लाहुल क्यों और कैसे पड़ा होगा, विचारणीय है। लाहुल निवासी स्वयं इस क्षेत्र को स्वङला देश कहते हैं और भोटी भाषी लाहुली भी लाहुल को गरजा कहते हैं। इस गुत्थी का उत्तर इतिहासकारों को ढूंढना होगा।

यदि एक प्राचीन एतिहासिक समझौते में, जो लद्दाखी राजा उतपल (1080-1110 ई.) और कुल्लू राजा के मध्य हुआ था, में ढूंढने की कोशिश की जाये तो क्या इस का उत्तर मिल सकेगा? लद्दाखी इतिहास (ल–दग–ग्यल–रबस) में लद्दाखी राजा ल्हछेन उतपल द्वारा कुल्लू पर राज करने का वर्णन आता है। इस की अस्पष्ट पुष्टि जोनाराज रचित इतिहास राज तरंगनी में भी मिलती है। इसमें जेब–उल–आवदीन के हवाले से कहा गया है कि 1428 ई. में कुल्लू भोट राजा के आधीन था। हम लद्दाख और कुल्लू के बीच समझौता का ज़िक्र कर रहे हैं कि कुल्लू राजा लद्दाख को प्रति वर्ष लोहा और ज़ो (बैल) भेजेगा और इस के बदले में लद्दाख से गंधक कुल्लू को भेजा जायेगा।

इस समझौता के आधीन लद्दाख को भेजा जाने वाला लोहा कुल्लू के लोग बेगार में पीठ पर लाहुल तक पहुंचाया करते थे और लाहुल वाले इसे लिंगती (बारा लाचा के पार) पहुंचाते थे। वहां से लद्दाख वाले जो गंधक ले कर आते थे, वह लोहा आगे लद्दाख ले जाते थे। लाहुल वाले वापस आते समय उसी गंधक को उठा कर लाहुल में कुल्लू वालों के सुपुर्द करते थे। उस समय यातायात का साधन न के बराबर था। कठिन पहाड़ों और चट्टानें पर मार्ग के नाम पर केवल पांव टिकाने भर का स्थान होता था और उफनती पहाड़ी नदी नालों में पुलों का कोई प्रबन्ध नहीं होता था। इस जोखिम भरे बदनाम बेगार के कार्य में कुछ लोगों को अपनी जान से भी हाथ धोना पड़ता था। इस कष्ट दायक बेगार कार्य के कारण कुल्लू वाले जब पीठ में लोहा उठा कर लाहुल की तरफ आते थे तो कहते थे कि लोहे को जा रहे हैं इस प्रकार रोहतांग जोत के पार

पृष्ठ 56 पर जारी

मामा जी नहीं रहे

कुलजीत क्रोफा

शाम को दफ्तर से घर पहुंचा ही था तो फोन बज उठा। सवी का फोन था, यह खबर देने के लिए। साथ साथ रो भी रही थी। अचानक खबर सुनकर सकते में आ गए। कुछ कहते बना नहीं, कोई सांत्वना भी उसे दे नहीं पाए। सिर्फ इतना ही पूछ पाए कि यह कब हुआ। फिर अच्छा ठीक है कह कर फोन काट दिया, और कह भी क्या सकते थे।

औरों के लिए गुड्रङ गुरह मेमे, गुरह म्हमा, या गुरुजी रहे होंगे, पर हमारे लिए सिर्फ मामाजी थे। एक अंतरंग सा रहता था। बाहर से अधिक कुछ दिखता नहीं था। जब मिलते थे तो न मुझसे ज़्यादा कुछ बोला जाता था और न ही वे कोई अधिक लाड़ जताते थे पर मिलने की बड़ी जिज्ञासा रहती थी हमेशा और जब मिलते थे तो बेहद सुख महसूस होता था। मिलना भी कहां अकसर हो पाता था, साल दो साल में जब घर जाने का मौका मिलता था तो पहुंचने के बाद प्रथम पड़ाव प्रायः उन्हीं के यहां होता था। उन्हें भी शायद खबर हो जाती थी और जब रू–ब–रू होते थे जो खुशी की झलक उनके चेहरे पर भी दिखती थी। बहुत खुशी से मिलते थे और बहुत इज़्ज़त से आव–भगत करते थे।

यूं तो अधिकांश लोग उनके पास अपनी समस्याओं का समाधान पाने के लिए आते थे। इस आस्था से आते थे कि उनके पास कोई दिव्य शक्ति थी और वे इसके ज़रिए उनकी समस्याओं का कारण ढूंढ पाएंगे और उन कारणों का तोड़ भी निकाल पाएंगे और प्रायः ऐसा होता भी था। इसीलिए तो वह आस्था न सिर्फ बनी रही बल्कि समय के साथ बढ़ती गई।

पर मैंने कभी कोई प्रश्न उनसे किया नहीं। एक वजह उसकी यह भी थी, इतनी श्रद्धा उनके प्रति थी कि ऐसा लगता था उनसे कुछ पूछना उनके इम्तिहान लेने जैसा होगा जो कि हम सोच भी नहीं सकते थे। दूसरी वजह ये धारणा थी कि यदि कोई प्रश्न है भी तो वे स्वयं ही जान लेंगे और उसका हल भी स्वयं ही देख लेंगे और वह आशीर्वाद भी था कि कभी कोई बड़े मसले सामने खड़े नहीं रहे। हां, मां हमेशा उनसे पूछ ताछ करतीं रहती थीं हर छोटे बड़े मुद्दों को लेकर। मुझे याद पड़ता है जब मैं सिविल सर्विस के इम्तिहान में बैठा था तो मां ने फिर उनसे पूछा कि नतीजा कैसा रहेगा। मामा जी ने बताया कि एक पेपर खराब हुआ है पर फिर भी कुछ न कुछ मिलने की सूरत दिख रही है। जब इम्तिहान के बाद घर पहुंचा तो ये खबर मां ने मुझे दी। जहां तक अपना ख्याल था, लगा था कि सभी पेपर एक से ही हुए हैं। खैर जब रिज़ल्ट आया तो पता चला कि हिस्ट्री के एक पेपर में सच में बहुत ही कम अंक मिले थे।पर फिर भी इतना ज़्यादा तो गया था कि किसी सैंटर अलाईड सर्विस में घुस पाएं। मैं अचम्भित था। सिविल सर्विस इम्तिहान की पेचीदगी खुद मुझे पूरे तौर पर मालूम नहीं थी फिर मामा तो बहुत ही कम पढ़े लिखे थे फिर भी इतनी स्टीक भविष्यवाणी! कुछ तो था उनमें जो इस तरह साफ साफ देख पाते थे।

पर बड़प्पन इस में था कि कभी उन्होंने ये दावा नहीं किया कि उनमें कोई खास शक्ति थी। जब भी श्रद्धालु कभी कुछ पूछने आते थे तो उनकी विनम्रता देखते ही बनती थी। यही कहते रहते थे कि सब ठीक हो जाएगा। ऐसी कोई बात नहीं थी जिसमें वे कुछ कर पाएंगे। कोई बीमारी का मसला हुआ तो कहते थे कि दवा दारू ठीक से करा लें, किसी अच्छे डॉक्टर को दिखा लें और एहतिहात बरतें। वैसे भी कोई दूसरी परेशानी होगी तो कुछ और सुझाव देंगे। पर कभी ये दावा नहीं करते थे कि मैं सब ठीक कर दूंगा और कुछ करने की ज़रूरत नहीं। पर श्रद्धालु भी कहां इतनी आसानी से मानने वाले होते थे। जब बहुत इसरार करते थे तो अचानक कुछ लम्हों के लिए चुप हो जाते थे और फिर बताते थे कि मसला क्या है और उस का उपाय क्या है। कभी अचानक जोश में आ जाते थे और तब उनकी आखों में कुछ अलग सा ही तेज झलकता था, चेहरे पर एक अलग सा नूर उभर आता था, आवाज़ में एक अलग सा दम रहता था।

कुछ ऐसा था कि श्रद्धालुओं को यह अहसास दिलाना पड़ता था कि उनमें दिव्य शक्ति है और वे उस को आज़मा के तो देखें। ऐसा मिसाल कम ही देखने को मिलता है।

और सादगी ब्यान करने की ज़रूरत नही, जिनका भी वास्ता उनसे पड़ता, यह उन्होंने खुद महसूस किया होगा, कैसे बुज़ुर्ग बन गए थे पर फिर भी अपने से बहुत छोटे जनों से भी बेहद अदब से पेश आते थे। सभी के साथ जी करके बात किया करते थे। आवाज़ से विनम्रता झलकती थी। मुझसे भी कभी जी करके बात करते थे तो बड़ी झेंप होती थीं। कई बार अपने घर में अपने ही बच्चों से जी कर के बात करते हुए भी मैंने उन्हें देखा है।

एक सच्चे खरे कर्मठ इंसान, अपने इमान पर अडिग, लोभ लालच से अनछुए। सब के लिए हमेशा शुभ सोचने वाले, जहां भी जाते थे शागुण करते थे तो यही दुआ देते थे कि भगवान भला करे। उनके चरित्र के इन्हीं गुणों को देख कर ऊपर वाले ने उनको वो अनोखी कूवत अता की होगी जिस का उपयोग भी उन्होंने सदा दूसरों के हित में ही किया। जो भी दुआ वे किसी के लिए करते थे तो सच्चे मन से करते थे, उसमें कोई स्वार्थ निहित नहीं होता था। इसी लिए उस दुआ में इतनी शक्ति होती थी और इतना असर दिखती थी।

बातों में भी वही स्वाभाविक सादगी, कोई कोशिश नहीं उनको ज़बरदस्ती नफीस बनाने की, चाहे चर्चा अध्यात्म की हो, उनके अपने अनुभवों की हो या किसी को सलाह देने की हो। पर सादगी में भी बहुत वज़न होता था, बस समझाने की ज़रूरत होती थी। मुझे जब यह नौकरी मिली तो मामा जी ने कहा था बड़े ओहदे पर जा रहे हो बहुत बड़े बड़े लोग और बहुत गरीब लोग भी मिलने आएंगे। सब से शराफत से मिलना, सब की बात सुनना। बड़े लोगों की सुनवाई करने वाले तो बहुत होते हैं, गरीबों की सुनवाई ज़रूर करना और जितना हो सके मदद भी करना। बात तो बड़ी सादी सी लगती है पर ज़रा गहरे उतर कर देखें तो इस के मायने समझ में आते हैं।

उसके बाद जब भी साल दो साल में मिलना होता था तो चलने से पहले एक शुङ बना कर ज़रूर देते थे और चलते चलते दो तीन थपकी पीठ पर देते थे। हर बार यही आशीर्वाद देते थे कि तगड़ा रहो, होशियार बनो। उससे कितना हौंसला मिलता था, कितना आत्म विश्वास बढ़ता था उसको बयॉ करना अब मुमकिन नहीं है।

अब न वे पहले पड़ाव रहे, न उनके साथ शगुण करने का अवसर रहा, न शुङ बंधवाने की सूरत रही, न पीठ पर थपकी पाने की गुजाइश रही न आशीर्वाद लेने का स्रोत ही रहा। न हौंसलाअफज़ाई होगी अब, न आत्मविश्वास को वह बल मिलेगा। एक अजीब खालीपन सा महसूस होता है। एक स्तम्भ जिसके साथ खड़े होने भर से इतना सामर्थ्य मिल जाता था आज नहीं रहा। वे रिक्तता तो हमेशा रहेगी, पर यह रोना तो अपने लिए हैं खुद उनके लिए तो ये उत्सव का अवसर रहा होगा। वो शिव के भगत थे और अब शिव के पास लौटने का समय आ गया था। हम यही दुआ कर सकते हैं कि शिव उनको अपने में आत्मसात कर लें। उनके लिए इससे बड़ा सेलीब्रेशन और क्या हो सकता है।

अलविदा मामाजी!

श्रद्धांजली

लाहुल के युगपुरूष गुङ्डुङ गुर अब नहीं रहे। आप का जन्म गुशाल गांव में हुआ। तदन्तर युवावस्था में शिव की भक्ति में लीन हो कर विभिन्न स्थानों पर घोर तप किया। तद्पश्चात् गुशाल गांव में गृहस्थ जीवन जीते हुए लोक कल्याण हेतु कार्य करने लगे। आपके द्वार पर जो भी कोई दुखीजन आया उस के दुख का निवारण किया। आप जब शिव में लीन हो कर कीर्तन करते तो अचानक लयमय हो कर नृत्य करने लग जाते, तब सब कुछ शिवमयी हो जाता था।

आज आप शिव में लीन होकर अपनी दयामयी आंखों से हमें आशीर्वाद दें यही विनती सारा लालौल आप से कर रहा है। आप के आदर्श जीवन को अपनाते हुए स्वःधर्म का पालन करते हुए हम अपना जीवन यापन करें यही आपके लिए सच्ची श्रद्धांजली होगी। लाहौल सदा शिवमयी बना रहे।

सम्पादक

पट्टनवादी के किर्तिंग गांव के दो सहोदर भाइयों का कथात्मक घुरे–गीत

– स्व.के.अंगरूप लाहुली

पट्टनवादी के घुरे–गीत उस गौरवपूर्ण विरासत की यादगार हैं जिस पर उस लहलहाती सुरम्य घाटी का प्रत्येक व्यक्ति गर्व का अनुभव कर सकता है। उदाहरण के तौर पर–(1) कैता माया राम की आत्महत्या (2) गौशाल नगर प्रमुख धुमा–धूमा का कथा गीत, उसी गांव की (3) रूपी रानी की वीर–गाथा। (4) चेम्बक ग्राम के वज़ीर राम स्नेही तथा (5) गुरु घंटा–पाद के विहार के जीर्णोद्धार का कथा–गीत आदि मानव सभ्यता की कहानी अपने आप में सदियों से इतिहास को संजोए हुए हैं। इसीलिए कहा जाता है कि इतिहास के निर्माण में मौखिक साहित्य जैसे–लोकगीतों और कथाओं का भी महत्पूर्ण योगदान होता है। पुरा–काल में मानव समाज जब आनंद विभोर होकर गाते और मनोरंजन करते थे तो उनके गीत और गाथाएं मौखिक ही होते थे क्योंकि उस समय समाज में लिपि का प्रचार नहीं हुआ था। लोक–गीत और गाथाओं की यही विशेषता होती है। अतः यह मौखिक साहित्य कहलाता है। इतिहास की रचना में इनका बड़ा योगदान होता है परन्तु इस संदर्भ में पश्चिम का एक विद्वान मिस्टर जिसविक ने लिखा है––''लोक–गाथा तभी तक जीवित रह सकती है, जब तक मौखिक साहित्य के रूप में वर्तमान रहे, उसे लिपिबद्ध करने का अर्थ होगा कि उसकी हत्या कर डालना।'' उनके कहने का तात्पर्य यह था कि लोक–गीत या गाथाओं को लिपिबद्ध कर देने से वह सामान्य समाज के आकर्षण से अछूता रहकर, एक निर्धारित विशिष्ट पाठक वर्ग का विषय वन जाता है और कालान्तर में उसके लुप्त हो जाने का संदेह बना रहता है।

ऐवमेव, एक समय दरिया चंद्र–भाग के पार्श्व स्थित किर्तिंग गांव के उत्तराखण्ड में दो सहोदर भाई हिमस्खलन के प्रवाह में दफन होकर इहलीला समाप्त कर गए थे। उन काल–कलवित हुए सहोदर भाइयों की जीवनी को यानि उस अवसाद पूर्ण हादसे को एक ज़िंदा–दिल गीतकार ने घुरे–गीत का रूप देकर तथा उजागर कर लोक मानस पर सदा के लिए अंकित कर दिया है। यद्यपि यह एक ऐतिहाासिक घटना थी, परन्तु इसे घुरे–गीत में बांधकर रसज्ञ ने जहां अपने काव्य प्रेम को जीवित रखा है वहीं अपने प्रिय विषय के लिए प्राचीन कथानक का चयन किया है।

घुरे का कथानक इस प्रकार प्रारंभ होता है। अतीत में चंद्र–भागा की उपत्यका में स्थित पट्टनवादी के किर्तिंग नामक गांव के एक सामान्य परिवार में रघु और भगुमान नाम के दो सहोदर भाई रहते थे। रघु अवस्था में बड़े थे और भगुमान छोटे। दोनों ही भाई सुंदर, सुशील और परोकारी तथा उद्यमी थे। वे सगे–संबधियों और मित्रों से विशेष अनुराग रखने वाले थे। किंतु हंत, उनकी लाड़ी को अपने सुयोग्य युवा पतियों का सुहागिन होकर दीर्घकाल तक सुखी जीवन जीने का सुयोग प्राप्त न हुआ। जब दोनों भाई घर–गृहस्थी के कार्य में दत्तचित्त होकर संलग्न थे तभी हिमस्खलन में दबकर पंचत्व को प्राप्त कर गए। उस अवसाद पूर्ण घटना ने माता तिराती और सहधर्मिणी लाड़ी के ह्रदय को मथ डाला। घर के दोनों युवा पुरुषों के एक साथ असामयिक मृत्यु से मां तिराती बहुत आहत हुई और वह घर की भावी व्यवस्था के संबंध में गंभीरता से सोचने लगी तो वह और भी चिंतित हो कर विक्षिप्त की स्थिति को जा पहुंची। उनकी आंखें अश्रु धाराओं से सदा भरी रहने लगी। घर का सारा काम बाधित हो गया। अंततः स्वजनों की सांत्वना और गांव के सहणौ (=सायानों) के सहानुभूतिपूर्ण ढाढस के कारण मां और बहु दोनों शोक से शमन होकर स्वस्थ हुए और वे अपने दैनिक कार्यों में फिर से जुट गए।

घुरे–गीत की कड़ियां निम्न प्रकार से हैं –

मा–ईं तिरा–ती, पेटे–दो प्राणी।
पेटे–दो प्राणी, सूजू–णी लागी।
सूजू–णी ला–गी, पूतू–रा जामी।
सूजू–णी ला–गी, दुये पूतूरा जामी।
दुये–पूतूरा जामी, बा–धाई लागी।
बा–धाई लागी, ना–माना राखी।
ना–माना रा–खी, रघु–वा भगुमान।
रघु–वा भगुमान, भाई–रे जोड़े।
कबु–ला गा–यी, बणे–आना छूटी।
पा–पी आं,–मूरा, घूड़ून–दे लागी।
रघु–वा भगुमान, पेके–णु त्यारी।

स्त्रियों का पुत्रवती न होना बहुत श्राप समझा जाता है। अतः संतान प्राप्ति के लिए धर्मपरायण मां तिराती की इच्छा दिन–प्रतिदिन तीव्र से तीव्रतर हो गई। वह कुल देवता की अराधना किया करती थी। जिनकी शरण में गुहार कर समय आने पर वह गर्भवती हो गई और उसे जुड़वां पुत्ररत्नों की प्राप्ति हो गई। दोनों पुत्र चंद्रमा की कलाओं की भांति बढ़ने लगे। उनकी किलकारियों से संपूर्ण क्रिर्तिंग गांव गूंज उठा। गांव वालों का सारा ध्यान उन नवजात शिशुओं पर केंद्रित हो गया और वह दौड़े–दौड़े उस सुहागिन के घर बधाइयां देने जा पहुंचे व शिशुओं के नामकरण करने की बात भी करने लगे तो। ज्येष्ठ पुत्र का नाम रघु और अनुज का नाम भगुमान रख लिये।

कर्म बलवान होता है। होनी को कौन रोक सकता है। दोनों भाई बाल्यावस्था की दीर्घा को पार कर तारूण्य के वायुमंडल में अभी सांस लेने ही लगे थे कि घर–गृहस्थी की सारी ज़िम्मेवारी उनके कंधों पर आ पड़ी थी। वे अपने दायित्व को बखूबी निभा रहे थे तथा जीवन के संकटमय क्षणों में भी वे प्रसन्न रहते थे। वास्तव में वह हर प्रकार से महान थे। किंतु भाग्य को और ही मंजूर था। शरद ऋतु में घर की एक कपिला गाय मार्ग से भटककर जंगल में छूट गई। इतने में एक निष्ठुर घनघोर घटा आकाश में घुड़ुकने (धमकाने) लगा। रघु और भगुमान दोनों भाई गाय को पेखने यानि ढूंढने के लिए वन–प्रदेश को जाने की तैयारी करने लगे। वह यह नहीं चाहते थे कि गाय को जंगल में अपने भाग्य पर छोड़ दिया जाए। वह उन्हें अपनी जान से भी प्यारी थी।

मा–ईं तिरा–ती, ठालू–णी लागी।
मातु–गाच्छ पुतू–रा, गा–यीरे पेके।
ग्रां–यीरे गब–रू, ठालू–णी लागी।
मातु–गाच्छ भाई–रे गा–यीरे पेके।
सैजे–री लाड़ी, ठालू–णी लागी।
मातु–गाच्छ खवां–दा, गा–यीरे पेके।
रघु–वा भगुमान, मनु–णेरी नायी।

मां तिराती अतीत में घटित नाना हादसों को सुनाती हुई अपने पुत्रों से लुभावने स्वर में कहने लगी। हे! प्रिय सुतो! इस बे–मौके गाय को ढूंढने के लिए जंगल में मत जाओ। यह वन–प्रदेश को जाने का समय नहीं है। उसी प्रकार अपने गांव के गबरू यानि नौजवान भी अनिष्ट की शंका से उन दोनों भाइयों से गाय को खोजने के लिए कुसमय जंगल जाने से मना करने लगे। उनकी सहधर्मिणी लाड़ी तो यह सोच कर कि इस विपरीत मौसम में पतिदेवों को जंगल जाने देना खतरे से खाली नहीं है। अतः यह पतियों के पांव पड़कर वंचनीय स्वर में विनती करने लगी। हे! खवाविंदो गाय को ढूंढने के नाम पर अपनी जान जोखिम में मत डालो। यह समय जंगल जाने

का नहीं है। किंतु रघु और भगुमान गाय को सकुशल घर लाने का प्रण कर चुके थे। फलस्वरूप वे किसी भी बात सुनने को तैयार नहीं थे। बाल्यजीवन में वे उस कपिला गाय को गऊ–ग्रास खिलाया करते थे। अतः गाय की ममता उन्हें मोहित किए था। यही वजह थी कि धर्मपत्नी के और आग्रह पर वे बिगड़ कर गुस्सा भी गए थे।

ठा–टू मा–ई, द्विये–माणी खरूचे।
दे–यो ला–ड़ी, द्विये–जूता पूह–ले।
रघु–वा भगुमान, पे–केनु गेये।
सुरु–जुणे गोटे, गवां–बासूंदे शूणी।
रघु–वा भगुमान, सुरू–जुणे गोटे।
सा–री परू–बत, हिवां–छूटी आयी।
रघु–वा भगुमान, हीवां–णी दाबी।

जुड़वां भाई गाय को ढूंढने की धुन में अपनी मां से कहने लगे। अम्मा! हमें गाय को किसी प्रकार जीवित खोज कर लाना है। अतः दो मानु (आदमी) के लिए कलेवा तैयार करवाओ। वह अपनी धर्मपत्नी से कहने लगे। हे भार्या! हमें दो जोड़ा पहनी दो कहकर तथा अन्य आवश्यक सामानों को लेकर तथा घरवालों को शुभविदा कहकर घर से चल पड़े। वे अभी घर से दो–चार कोस (एक कोस दो मील के बराबर होता है।) वन–प्रदेश की ओर चढ़ाई चढ़े ही थे कि उपर सुरजणी नामक पर्वत के छोर पर से उन्हें गाय के रंभाने की आवाज़ सुनाई दी। इस पर उन्हें गाय मिलने की पूरी तसल्ली हुई और वे दुगने उत्साह के साथ सुरजणी पहाड़ के किनारे की ओर अभिमुख होकर चढ़ने लगे। उनके मन में यथाशीघ्र गाय के पास पहुंचने की चाह थी, परंतु चढ़ाई सीधी थी। अतः वे जल्दी चढ़ न सके। इतने में उत्तर की ओर से पर्वत की संपूर्ण हिमराशि नीचे की ओर स्खलन होकर छूट (गिर) आई। फलतः रघु और भगुमान दोनों भाई उस भयानक हिमनद में दफन होकर मृत हो गए।

घरे–पीछे चू–ली, ये–री बूटी।
चू–लीये बू–टी, गवां–कगा–बसूंदे लागी।
ग्रां–यीरे ग–बरू, काणे–काणे बोले।
रघु–वा भगुमान, ही–वांणी दाबी।
सैजे–री लाड़ी, बूड़े–बूड़े रोयी।
मां–ई तीरा–ती, बूड़े–बूड़े रोयी।

उनके घर के पिछवाड़े में चुली यानि खुरमानी का एक जीर्ण–शीर्ण सा पादप विद्यमान था। एक गंवर (गांव का रहने वाला) कागा– कौआ उस चुली के बूटे पर आकर अपशगुन कर्कश आवाज़ देने लगा। लोगों को उस सांकेतिक आवाज़ को समझने में देरी नहीं लगी। इस पर गांव के युवा वर्ग कानाफूसी करने लगे कि रघु और भगुमान दोनों भाई हिमस्खलन में दफल हो गए लगते हैं। जब वह अवसाद पूर्ण घटना प्रकाश में आया तो घर और गांव में मातम छा गया। उनकी लाड़ी ज़ोर–ज़ोर से क्रंदन करने लगी और माईं तिराती तो बहुत दुखी हो कर अन्न–पान तक त्याग कर विलाप करने लगी।

उपर्युक्त घुरे–गीत से स्पष्ट है कि इसमें लाहुल घाटी के प्राक–काल के लोक जीवन का मार्मिक वृत्तांत चित्रण हुआ है। आज के शिक्षित नवयुवक आधुनिकता की अंधड़ में पड़कर लोक–मानस के इस अमूल्य एवं अक्षय घुरे–गीतों को अगली पीढ़ी तक संप्रेषित करने मे अक्षम प्रतीत हो रहे हैं।

अतीत की इस लंबी अवधि में, किर्तिंग गांव में अनेक सुखद–दुखद घटनाएं घटी हैं। परंतु हमें उपर्युक्त दो सहोदर भाइयों की कथा का ही अवबोध है। जीव प्रेम के नाते आला–उत्सर्ग करने वाले उन आदर्शमय सहोदर भाइयों के घर का नाम आज भी रघु परिवार कहलाता है।

गवैया –स्व. श्री ठाकुर दास रोकपा, गांव गौशाल।

उदार सांस्कृतिक व्यक्तित्व
(बौद्ध संस्कार)

टशी पलजोर

(प्रो. उपाध्याय जब बौद्धधर्म से प्रभावित हुए तथा जीवन के अन्तिम दिनों वे श्रीलंका में बौद्धशिक्षा ग्रहण कर कुछ दिनों तक भिक्षु का जीवन व्यतीत करने लगे तो उन्होंने भारतीय समाज में रहने वाले बौद्धों के लिए एक बौद्ध जीवन पद्धति को छपवाया। जो विस्तृत होने के कारण यहां नहीं दिया जा सकता, पर सारांश यहां प्रस्तुत है।)

बौद्ध होने के लिए निम्नलिखित कृत्य आवश्यक हैं।

पंचांग नमस्कार –

1 पंजों के बल बैठना।
2 दोनों पैर के ठेहुनों पर दोनों हाथ की केहुनी सटाना।
3 दसों अंगुलियां सटाकर हाथ जोड़ना।
4 जोड़े हुए हाथों को ललाट पर सटाना।

त्रिशरण –

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स
नमो तस्स भगवतो अरहतो सस्मासंबुद्धस्स
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स
बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि
दुतियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि
दुतियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि
दुतियम्पि संघं सरणं गच्छामि
ततियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि
ततियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि
ततियम्पि संघं सरणं गच्छामि

पंचशील –

पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

प्रणाम विधि –

1 दोनों हथेलियों को ज़मीन पर सटाना।
2 दोनों पैरों के घुटने ज़मीन पर सटाना
3 दोनों हाथ की केहुनी ज़मीन पर सटाना
4 मस्तक को ज़मीन पर सटाना

इस प्रकार त्रिशरण और पंचशील ग्रहण कर कोई प्राणी बौद्ध बन सकता है। वह उसके अनन्तर बौद्धविधि से निम्नलिखित प्रकार से संस्कारों को सम्पन्न करेगा।

संस्कार

(1) नामकरण –

माता–पिता शिशु के जन्म के सातवें सप्ताह में अपने घर में, बुद्ध मन्दिर या विहार में किसी भिक्षु या बौद्धाचार्य से नामकरण संस्कार करायें। यदि घर में कराना हो तो पहले घर की अच्छी तरह सफाई करके जिस स्थान पर संस्कार होना है, वहां कुछ ऊंचाई पर भगवान बुद्ध की मूर्ति या चित्र और बोधिसत्व बाबा साहब अम्बेडकर का फोटो स्थापित करना चाहिए। बच्चे को स्नान कराकर उसे नये वस्त्र पहनाना चाहिए। माता–पिता भी स्नान कर स्वच्छ वस्त्र पहनें। शिशु को गोद में लेकर माता और पिता बुद्ध पूर्ति के सम्मुख बैठें। बौद्ध भिक्षु या बौद्धाचार्य तथा निमन्त्रित बन्धुओं के आ जाने पर नीचे लिखी विधि से सारे काम करें –

सामग्री–तश्तरी में सजे हुए फूल, कटोरी में पानी, अगरबत्ती, दीपक या मोमबत्ती, पानी भरा हुआ मिट्टी का एक छोटा घड़ा, कच्चा सूत और जामुन, आम या अशोक वृक्ष के पत्ते।

इस सब सामग्री को पहले ही भगवान बुद्ध की मूर्ति या चित्र के सामने सजा कर रख दें। घड़े के पानी में पत्तों का डंठल डूबे रहेंगे तथा पत्तियां ऊपर रहेंगी। कच्चा सूत घड़े के गले में लपेट दें।

i, नमस्कार (पहले की तरह) करते हुए बौद्ध भिक्षु या बौद्धाचार्य से त्रिशरण और पंचशील की याचना इस प्रकार करें –

ओकास, अहं भन्ते, तिसरणेन सह पंचसीलं धम्मं याचामि। अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ मे भन्ते।

(अवसर दीजिये भन्ते, मैं त्रिशरण के साथ पंचशील की याचना करता हूं। दया करके मुझे शील दीजिए)

दुतियम्पि अहं भन्ते, तिसरणेन सह पंचसीलं धम्मं याचामि। अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ मे भन्ते।

ततियम्पि अहं भन्ते, तिसरणेन सह पंचसीलं धम्मं याचामि। अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ मे भन्ते।

आचार्य कहेंगे –

यमहं वदामि तं वदेहि

(मैं जो कहूं, वही कहो)

उपासक – आम्, भन्ते (अच्छा पूज्यवर)

भिक्षु या बौद्धाचार्य त्रिशरण दें।

त्रिशरण के बाद आचार्य कहेंगे –

तिसरणगमनं सम्पुण्णं (त्रिशरण गमन पूर्ण हुआ)

उपासक – आम, भन्ते (हां भन्ते)

इसके बाद आचार्य पंचशील दें। उसके बाद –

आचार्य– तिसरणेन सद्धिं पंचसीलं धम्म साधुकं सुरक्खितं कत्वा अप्पमादेन सम्पादेतब्बं।

(त्रिशरण सहित पंचशील की ठीक आचरण से सुरक्षा करके, बिना लापरवाही उसका पालन करो)

उपासक – आम्, भन्ते (अच्छा, भन्ते)

ii, घड़े में लपेटे हुए सूत का सिरा शिशु के माता–पिता के हाथ में पकड़ा कर भिक्षु या बौद्धाचार्य मंगलसुत्त का या अन्य सूत्रों का पाठ करे।

iii, माता–पिता की सलाह से भिक्षु या बौद्धाचार्य शिशु के नाम की घोषणा करे।

iv, तदनन्तर नीचे लिखी गाथाओं को बोलते हुए भिक्षु या बौद्धाचार्य कलश में रखे पत्तों से धीरे–धीरे घड़े के पानी से माता–पिता एवं शिशु पर अभिषेक करे –

भवतु सब्बमंगलं रक्खन्तु सब्बदेवता।
सब्बबुद्धानुभावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते।।
भवतु सब्बमंगलं रक्खन्तु सब्बदेवता।
सब्बधम्मानुभावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते।।
भवतु सब्बमंगलं रक्खन्तु सब्बदेवता।
सब्बसंघानुभावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते।।

(तुम्हारा सभी प्रकार से मंगल हो, सभी देवता तुम्हारी रक्षा करें तथा समस्त बुद्ध, धर्म और संघ की महिमा से तुम्हारा हमेशा कल्याण हो।)

v, अंत में भिक्षु या बौद्धाचार्य घड़े में लपेटे सूत को तिहरा करके माता–पिता एवं शिशु की दाहिनी कलाई में नीचे लिखी गाथा बोलते हुए बांधें।

सब्बे बुद्धा बलप्पत्ता पच्चेकानं च यं बलं।
अरहन्तानं च तेजेन रक्खं बन्धामि सब्बसो।।

इस रक्षा सूत्र को बाद में खोलकर घर में ही कहीं बांध देना चाहिए और घड़े के बचे जल को घर में तथा आस–पास छिड़क दें।

2 विद्यारम्भ –

शिशु जन्म के तीन वर्ष बाद यह संस्कार करना चाहिए।

सामग्री – तश्तरी में सजे फूल या फूलों का गुलदस्ता, कटोरी में पानी, अगरबत्ती, दीपक या मोमबत्ती, स्लेट एवं खड़िया मिट्टी।

विधि – i, बच्चे को नहला–धुलाकर और साफ कपड़े पहनाकर घर में बुद्ध की मूर्ति या चित्र तथा बाबा साहब के फोटो के सामने या बुद्धमंदिर में ले जाना चाहिए।

ii, बुद्ध की मूर्ति के सामने सजे फूल, गुलदस्ता, पानी, अगरबत्ती और मोमबत्ती या दीपक जलाकर रखना चाहिए।

iii, पूर्व विधि से नमस्कार करते हुए भिक्षु या बौद्धाचार्य से त्रिशरण और पंचशील देने की प्रार्थना करनी चाहिए। इसमें बालक के साथ माता–पिता भी सम्मिलित हों।

iv, त्रिशरण एवं पंचशील ग्रहण करना।

v, बालक के हाथ से भिक्षु या बौद्धाचार्य स्लेट पर खड़िया मिट्टी से 'अरहं' लिखवाए।

vi, तदुपरान्त सुविधानुसार माता–पिता बालक का किसी विद्यालय में नाम लिखवाए।

3 श्रामणेर दीक्षा संस्कार –

बौद्ध धर्म में प्रचलित रीति–रिवाज़ के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में कम से कम एक बार प्रव्रज्या (श्रामणेर दीक्षा) ग्रहण करनी चाहिए। श्रामणेर को दस शीलों का पालन करना चाहिए। श्रामणेर–दीक्षा तीन दिन, पांच दिन, सात दिन, पन्द्रह दिन से लेकर एक दो वर्ष तक की भी होती है। दीक्षा लेकर विहार में भिक्षुओं के साथ रहते हुए ध्यानभावना एवं अध्ययन, मनन में समय बिताना चाहिए। यह दीक्षा भिक्षु से ही ग्रहण की जा सकती है। यह जीवन में कभी भी ग्रहण की जा सकती है। साधारण रूप से नियम यह है कि 4 वर्ष की आयु के बाद बच्चे की श्रामणेर दीक्षा होनी चाहिए। इसकी विधि भिक्षुओं को ज्ञात होती है। विनय पिटक में इसका पूरा वर्णन है। अतः यहां नहीं दी जा रही है।

4 विवाह संस्कार –

i, कुछ लोगों के बैठने लायक कपड़े या तृण का मण्डप बनाकर उसे फूल–पत्ती से सजाकर मण्डप में या बुद्धमंदिर में या बौद्धविहार में विवाह–संस्कार करना चाहिए। यदि घर में मण्डप बनाकर उसमें विवाह करना हो तो एक ऊंचा स्थान बनाकर उस पर भगवान बुद्ध की मूर्ति या चित्र और बाबा साहब अम्बेडकर का फोटो रखना चाहिए।

ii, भगवान बुद्ध के सामने एक तश्तरी में सजे हुए फूल, कटोरियों में पानी, अगरबत्ती और दीपक अथवा मोमबत्ती जलाकर रखना चाहिए।

iii, एक मंगल कलश (मिट्टी का नया घड़ा) में पानी भरकर उस पर जामुन, आम या अशोक आदि वृक्षों के पत्ते रखकर घड़े के गले में सूत लपेटकर बीच में रखना चाहिए। उसके एक ओर वर और कन्या बैठेंगे। कन्या वर के दाहिनी ओर बैठेगी। उसके पीछे दूसरी कतार में वर और कन्या के माता–पिता बैठेंगे। माता–पिता के अभाव या अनुपस्थिति में उनके अभिभावक बैठेंगे।

iv, सबसे पहले विवाह–विधि कराने वाला व्यक्ति, वर, कन्या और उनके माता–पिता को त्रिशरण और पंचशील प्रदान करेगा।

v, समर्पण–घोषणा –

(कन्याके माता–पिता द्वारा वर के माता–पिता के प्रति) त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म एवं संघ) की महिमा से हम उपस्थित समाज को साक्षी (पंच) मान कर अपनी प्रिय पुत्री को पुत्रवधू के रूप में आपको समर्पित कर रहे हैं। आज से हमारी पुत्री के सुख, दुःख आदि के तथा माता–पिता के समान संरक्षण के आप उतरदायी हैं। हमें विश्वास है कि आप अपनी इस नयी ज़िम्मेदारी का मन, वाणी और आचरण से निर्वाह करेंगे और दोनों घरों का सम्बन्ध दिनों–दिन मधुर बनाते रहेंगे।

vi, समर्पण–स्वीकार –

(वर के माता–पिता द्वारा कन्या के माता–पिता के प्रति) त्रिरत्न की महिमा से उपस्थित समाज को साक्षी बनाकर हम आपको वचन देते हुए कि आपके द्वारा दी हुई ज़िम्मेदारी का हम मन, वाणी और आचरण से निर्वाह करेंगे तथा पुत्रवधू के सुख, दुख और उसके संरक्षण में किसी तरह की कमी नहीं आने देंगे। हम उपस्थित समाज और आपको विश्वास दिलाते हैं कि दोनों घरों का सम्बन्ध मधुर बनाये रखेंगे।

vii, समर्पणविधि –

1 कन्या के पिता की दाहिनी हथेली पर कन्या की माता की दाहिनी हथेली रखना।
2 इनके ऊपर कन्या की दाहिनी हथेली और उस पर वर की दाहिनी हथेली रखना।
3 इन पर वर की माता की दाहिनी हथेली और उस पर वर के पिता की दाहिनी हथेली रखना।
4 सबसे नीचे एक बड़ी थाली रखना और
5 कन्या के मामा अथवा भाई द्वारा हाथों पर मंगल कलश से धीरे–धीरे पानी गिराना।
6 इस अवसर पर विवाह कराने वाला व्यक्ति मंगलसुत्त का पाठ करता रहेगा और जब तक पाठ होगा, पानी बराबर गिरता रहेगा।
7 पाठ बंद होने पर कन्या उठकर वर के बायीं ओर बैठ जायेगी।

viii, वर द्वारा प्रतिज्ञा करना –

त्रिरत्न की महिमा से मैं उपस्थित समाज को साक्षी करके पांच पवित्र प्रतिज्ञायें करता हूं –

बौद्धाचार्य –

पंचहि खो गहपतिपुत्त, ठानेहि सामिकेन पच्छिमा दिसा भरिया पच्चुपट्ठातब्बा –
सम्माननाय, अनवमानाय, अनतिचरियाय इस्सरियवोस्सग्गेन, अलङ्कारानुप्पदानेन।

वर कहे –

1 सम्माननाय – मैं हमेशा मन, वाणी और आचरण से अपनी पत्नी का सम्मान करूंगा और दूसरों से भी उसे सम्मान दिलाऊंगा।
2 अनवमानाय – मैं मन, वाणी और आचरण से कभी भी अपनी पत्नी का अपमान नहीं करूंगा, न उसे अन्य किसी से अपमानित होने दूंगा।
3 अनतिचरियाय – मैं कभी भी शराब आदि नशीली वस्तुओं का सेवन न करूंगा। जूआ न खेलूंगा तथा अपनी पत्नी के अलावा अन्य सभी स्त्रियों को मां–बहन की दृष्टि से देखूंगा।
4 इस्सरियवोस्सग्गेन – मैं उचित तरीके से धन कमा कर अपने माता–पिता और अपने आश्रितों का ध्यान रखते हुए अपनी कमाई पत्नी के हाथ में दूंगा।
5 अलङ्कारानुप्पदानेन – मैं अपनी पत्नी को वस्त्र, आभूषण आदि से सदैव संतुष्ट रखूंगा।

अहं पटिञ्चं करोमि, अज्जतो पट्टाय पंचपटिञ्चानुसारेण कायेन वाचाय मनसा च अप्पमादेन आचरणं करिस्सामि।
(मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आज से लेकर जीवन भर इन पांच प्रतिज्ञाओं के अनुसार शरीर, वाणी और मन से बिना लापरवाही के आचरण करूंगा।

ix, वधू द्वारा प्रतिज्ञा करना –

बौद्धाचार्य –

इमेहि खो गहपतिपुत्त, पंचहि ठानेहि सामिकेन पच्छिमा दिसा भरिया पच्चुपट्ठिता ठानेहि सामिकं अनुकम्पन्ति – सुसंविहिता कम्मन्ता च होति। संगहितपरिजना च। अनतिचारिनी च। सम्मतं अनुरक्खति। दक्खा च होति अनलसा सब्बकिच्चेसु।

कन्या कहेः–

1 **सुसंविहितकम्मन्ता–** मैं अपने घर के सभी कार्य कुल की रीति से भली प्रकार सम्पन्न करूंगी और शक्ति भर अपने काम से सभी को सन्तुष्ट रखूंगी।

2 **सुसंगहितपरिजना–** मैं अपने सदाचार और सद्व्यवहार से अपने सास–ससुर आदि सभी परिजनों को प्रसन्न रखने और इकट्ठा रखने का प्रयत्न करूंगी।

3 **अनतिचारिणी** – मैं सभी प्रकार के बुरे काम न करते हुए अपने पति का विश्वास प्राप्त करूंगी।

4 **सम्मतं अनुरक्खणं** – मैं अपने परिवार और पति की सभी प्रकार की सम्पत्ति की समुचित रीति से रक्षा करूंगी।

5 **दक्खा च अनला च सब्बकिच्चेसु** – मैं घर के सभी काम (भोजन बनाना, सीना–पिरोना, सफाई आदि) बिना आलस्य के ठीक समय पर ठीक ढंग से करूंगी।

अहं पटिञ्चं करोमि, अज्जतो पट्ठाय पंचपटिञ्चानुसारेण कायेन वाचाय मनसा च अप्पमादेन आचरणं करिस्सामि।

(मैं प्रतिज्ञा करती हूं कि आज से लेकर जीवन भर इन पांच प्रतिज्ञाओं के अनुसार शरीर, वाणी और मन से बिना लापरवाही के आचरण करूंगी)

x, पत्नी खड़ी होकर खड़े हुए पति के गले में जय माला (फूलों की या जरी गोटे की माला) डाले। इसी प्रकार पति भी पत्नी के सौभाग्य के लिए उसके गले में सौभाग्य–सूत्र या पुष्प पहनावे।

xi, वर की माता कन्या को तथा कन्या की माता वर को मिठाई खिलायें।

xii, उपस्थित सभी पूज्य स्त्री–पुरुष वर और वधू के उपर अक्षत और पुष्प गिराते हुए आर्शीवाद देंगे। उस समय इन मंत्रों का सामूहिक पाठ होता रहेगा –

भवतु सब्बमंगलं रक्खन्तु सब्बदेवता।
सब्बबुद्धानुभावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते।।
भवतु सब्बमंगलं रक्खन्तु सब्बदेवता।
सब्बधम्मानुभावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते।।
भवतु सब्बमंगलं रक्खन्तु सब्बदेवता।
सब्बसंघानुभावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते।।

xiii, बौद्धाचार्य मंगलकलश के सूत्र को तिहरा करके वर–वधू तथा उनके माता–पिता की दाहिनी कलाई में बांधे तथा इस गाथा का उच्चारण करे।

सब्बे बुद्धा बलप्पत्ता पच्चेकानं च यं बलं।
अरहन्तानं च तेजेन रक्खं बन्धामि सब्बसो।।

(दूसरे दिन इस सूत्र को हाथ से निकालकर कहीं घर में बांध दें।

xiv, केवल स्त्रियों की सहायता से वर के द्वारा वधू की मांग में सिन्दूर भरा जाये।

xv, वर–वधू सबको प्रणाम करेंगे – भगवान बुद्ध, भिक्षुओं, बौद्धाचार्य, माता–पिता तथा अन्य ज्येष्ठ लोगों को। विवाह कृत्य प्रातः काल हो तो उसी दिन, रात्रि में हो तो दूसरे दिन भिक्षुओं को भोजन–दान देना चाहिए।

5 मृत्यु–संस्कार –

मरणासन्न व्यक्ति को धम्मपद का पाठ या परित्राण पाठ सुनाना चाहिए। उस समय भिक्षुओं को दान देना चाहिए। उस समय भिक्षु न मिले तब भी दान करा कर बाद में उन्हें दे देना चाहिए।

मृत्यु हो जाने पर निम्न विधि करें –

i, मृतक को शमशान ले जाने से पूर्व स्नान करा कर शरीर पर सुगन्धित द्रव्य चन्दन आदि लगाना चाहिए।

ii, मृत स्त्री या पुरुष को वस्त्र (कफन) ओढ़ाना चाहिए।

iii, भिक्षु से या बौद्ध गृहस्थ (बौद्धाचार्य) से वहां उपस्थित सभी लोग त्रिशरण और पंचशील ग्रहण करें।

iv, भिक्षु या बौद्धाचार्य नीचे लिखी गाथा का पाठ करके उपस्थित लोगों को संसार की अनित्यता का उपदेश दे –

अनिच्चा बत संखारा उप्पादवयधम्मिनो।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति तेसं वूपसमो सुखो।

(सभी संस्कार (वस्तुएं) अनित्य हैं। उत्पन्न होकर नष्ट होना उनका स्वभाव है। उत्पन्न होकर वे नष्ट हो जाती हैं। उनका शान्त हो जाना परम सुख है)

जो उत्पन्न हुआ है उसे एक न एक दिन जरूर मरना है। यह नियम सभी पर लागू है। भगवान बुद्ध को भी शरीर छोड़ना ही पड़ा। सुनते हैं कि बुद्ध के शरीर छोड़ने के कुछ देर पहले यह जानकर कि भगवान अब नहीं रहेंगे, उनके प्रधान शिष्य आनन्द तथा उपस्थित भिक्षु और उपासक समूह विलाप करने लगे। तब भगवान ने आनन्द को बुलाकर कहा– आनन्द, तथागत ने यह कब कहा था कि तथागत नित्य है। (यानि कभी मरेंगे नहीं) आनन्द, जो उत्पन्न हुआ है, उसका मरना निश्चित है। यह बात जानकर बुद्धिमान व्यक्ति ज़रूर होने वाली बात के लिए शोक नहीं करता। तुम प्रज्ञा से अपना दुख कम करो और दूसरे लोगों को भी समझाओ।

भगवान ने समझाया – अनित्यता देवताओं सहित सारे लोक का धर्म है। उत्पन्न प्राणी की मृत्यु निश्चित है।

सब्बे संखारा अनिच्चा, दुक्खा, अनत्ता।

v, इसके पश्चात मृतक की अर्थी शमशान ले जाना चाहिए। अर्थी ले जाने वाले लोग धीरे–धीरे बोलें।

सब्बे संखारा अनिच्चा, सब्बे संखारा दुक्खा
सब्बे धम्मा अनत्ता।

vi, शमशन पर त्रिशरण, पंचशील ग्रहण करके चिता की तीन बार परिक्रमा कर अग्नि जलाना चाहिए।

vii, तीसरे दिन अस्थियों को बटोर कर एकत्र कर लें और यथा समय उसे किसी बड़ी नदी या समुद्र में प्रवाहित कर देना चाहिए।

viii, मृत्यु के सातवें, दसवें या बारहवें दिन मृत व्यक्ति के पुण्य के लिए जैसी शक्ति हो उसके अनुसार भिक्षुओं को, परिवार के लोगों को तथा अन्य उपासकों को भोजन कराना चाहिए। भिखारियों को भी भोजन देना चाहिए।

ix, भिक्षुओं को भोजन (मतकभत्त) और अन्य वस्तुएं देने से पूर्व त्रिशरण एवं पंचशील ग्रहण करके हाथ जोड़ ऐसा कहें –

कालकतानं अम्हाकं ञातीनं पुञ्ञत्थाय इमं भिक्खं भिक्खु–संघस्स देम।

(मरे हुए अपने संबंधियों के पुण्य के लिए यह भोजन दान हम भिक्षुसंघ को देते हैं)

भोजन–दान के बाद –

x, भिक्षु संघ को वस्त्र का दान करना चाहिए। भिक्षु उपस्थित न हो तो वह वस्त्र बौद्धाचार्य ले सकता है, किन्तु बाद में वह भिक्षुसंघ को दे देगा।

xi, मृतक के घर का कोई व्यक्ति एक पात्र (लोटे या गिलास) में जल लेकर धीरे–धीरे थाली में गिराए। पात्र में अन्य संबंधी भी हाथ लगाएं।

इदं नो ञातीनं होतु, सुखिता होन्तु ञातियो। (यह पुण्य कर्म हमारे संबंधी के लिए हो, हमारा सबंधी सुखी हो)

तदुपरान्त भिक्षु या बौद्धाचार्य इन गाथाओं को कहे –

उन्नमे उदकं वट्टं तथा निन्नं पवत्तति।
एवमेव इतो दिन्नं पेतानं उपकप्पति।।
यथा वारिवहा पूरा परिपूरेन्ति सागरं।
एवमेव इतो दिन्नं पेतानं उपकप्पति।।
इच्छितं पत्थितं तुय्हं खिप्पमेव समिज्झतु।
सब्बे पूरेन्तु चित्तसंकप्पा चन्दो पन्नरसो यथा।।

आयुरारोग्यसम्पति सग्गसम्पत्तिमेव च।
ततो निब्बानसम्पति इमिना ते समिज्झतु।।

(जिस प्रकार ऊंचे स्थल पर गिरा पानी नीचे बह जाता है, उसी प्रकार यहां दिया गया पुण्य मरे हुए लोगों को प्राप्त होता है। जिस प्रकार भरी हुई नदियां समुद्र को भर देती हैं, उसी प्रकार यहां दिया हुआ पुण्य मरे हुए लोगों को प्राप्त होता है। तुम्हारी चाही हुई और कामना की हुई सभी वस्तुएं तुम्हें शीघ्र प्राप्त हों। इस पुण्य कर्म से तुम्हें आयु, आरोग्य, स्वर्ग और निर्वाण सुख प्राप्त हो।

xii, भिक्षु या बौद्धाचार्य उपर लिखी 4 गाथाओं को बोलते रहेंगे और पानी गिराने वाला व्यक्ति तब तक थाली में पानी गिराता रहेगा।

xiii, उसके बाद भिक्षु या बौद्धाचार्य परित्राण पाठ करेंगे और उपदेश देंगे।

xiv, गृहस्थ हाथ जोड़कर पंचांग प्रणाम करे।

xv, भिक्षु या बौद्धाचार्य नीचे लिखी गाथा कहे।

अभिवादनसीलिस्स निच्चं बुद्धापचायिनो।
चत्तारो धम्मा वड्ढेन्ति आयु वरणो सुखं बलं।।

(जो हमेशा अपने से बड़ों को प्रणाम या सत्कार करता रहता है, उसकी ये चार बातें बढ़ती हैं– उम्र, वर्ण (रूप रंग), सुख और बल)

6 बौद्ध धर्म–दीक्षा –

बौद्ध धर्म विश्व का सबसे अधिक जनप्रिय एवं प्रगतिशील धर्म है। मानवीय समता, बन्धुता, स्वतंत्रता एवं करुणा इसके आधार हैं। जाति पाति, ऊंच नीच, छूत अछूत आदि मानव मानव में फूट और घृणा फैलाने वाले सिद्धान्त इसमें नहीं हैं। यह एक उदार और नैतिक आंदोलन है। यही कारण है कि आज भारत में बौद्ध धर्म में दीक्षा लेने की एक लहर उमड़ पड़ी है। इसकी शुरुआत सन् 1956 में बोधिसत्त्व बाबा सा. अम्बेडकर ने की, जब उन्होंने अपने लाखों अनुयायियों के साथ नागपुर में सामूहिक धर्मदीक्षा ग्रहण की।

बौद्ध धर्म में दीक्षा लेने से पहले अपने मन से जात–पात, ऊंच–नीच, छूत–अछूत आदि की भावना बिलकुल निकाल देना होगा। इसके बाद यह प्रयास करना चाहिए कि दस, बीस, सौ, पचास लोग मिलकर दीक्षा लें, किन्तु इस काम में अधिक विलम्ब होते दिखे तो रुकना नहीं चाहिए, क्योंकि मंगल कार्य जितना जल्दी हो उतना अच्छा है।

1 दीक्षा विधि –

दीक्षा लेने वाले लोगों को चाहिए कि आसपास के किसी बौद्ध विहार में जाकर वहां रहने वाले बौद्ध भिक्षु या श्रामणेर से अपनी इच्छा ज़ाहिर करें और वहीं धर्मदीक्षा ग्रहण करें।

यदि आसपास बौद्ध भिक्षु न मिले तो किसी गृहत्यागी अर्थात अनागारिक बौद्ध से दीक्षा लेनी चाहिए। वह भी न मिले तो ज्येष्ठ सदाचारी बौद्ध उपासक से दीक्षा ले लेनी चाहिए। इस असवर पर किसी ऊंचे आसन पर भगवान बुद्ध की मूर्ति या चित्र और बाबा साहब अम्बेडकर का चित्र स्थापित करना चाहिए। भगवान के सामने तश्तरी में सजे हुए फूल या फूलों का गुलदस्ता, कटोरी में पानी, अगरबत्ती और दीपक या मोमबत्ती जलाकर रखनी चाहिए।

2 नमस्कार विधि से पंचांग नमस्कार करते हुए भिक्षु या बौद्धाचार्य (दीक्षा देने वाले व्यक्ति) से त्रिशरण और पंचशील देने की प्रार्थना करनी चाहिए।

3 भिक्षु या बौद्धाचार्य विधिवत् 'नमो तस्स.' आदि का तीन बार उच्चारण करते हुए त्रिशरण और पंचशील प्रदान करे।

4 दीक्षा लेने वाले बोधिसत्त्व बाबा सा. अम्बेडकर द्वारा घोषित 22 प्रतिज्ञायें दुहराएं।

5 तदनन्तर अपने को बौद्ध घोषित करना चाहिए। जीवन भर भगवान बुद्ध की पूजा–वन्दना करना, सूत्रपाठ करना, भगवान बुद्ध की शिक्षाओं (शील, समाधि और प्रज्ञा) को जीवन में उतारना, भिक्षुओं को दान देना तथा बौद्ध धर्म के प्रचार का यथा शक्ति प्रयास करना चाहिए। अपने बच्चों का बौद्ध विधि से संस्कार करना तथा बौद्ध नाम रखना चाहिए। अपने को न किसी से नीचा और न ऊंचा समझना चाहिए अपितु सबके प्रति समान बुद्धि रखनी चाहिए।

स्पिति के गोन्पा : बौद्ध विहार

– मौलू राम ठाकुर

हिमाचल प्रदेश के लाहुल स्पीति किन्नौर आदि जनजातीय क्षेत्रों में देवालयों की शैली शेष भाग की शैलियों से बहुत भिन्न है। वास्तव में इन क्षेत्रों की पूजा–पद्धति ही अन्य क्षेत्रों से पर्याप्त अन्तर रखती है। यहां पूजा–स्थल को गोन्पा (लिखित रूप द्गोन–पा) कहते हैं। इसका शाब्दिक अर्थ एकान्त–स्थान है, अर्थात ऐसा स्थान जो अन्य लोगों के निवास–स्थान से दूर या अलग–थलग हो। इस तरह इसमें 'आरण्य' की सी भावना निहित है। जंगल या पहाड़ के बीच में ऐसा स्थान जो मूल बस्ती से दूर हो, जहां समाज के चहल–पहल का आभाव हो और जहां वातावरण शान्त हो। इसीलिए गोन्पा का अर्थ 'कान्तार' भी है। अर्थात ऐसा दुर्गम–स्थान जहां हर–कोई आसानी से आ–जा न सके। केवल लामा और भिक्षु ही धार्मिक साधना में लीन हो। इस लिए गोन्पा मूलतः उभरी चट्टानों के नीचे, पहाड़ की कन्दराओं, दरारों अथवा गुफाओं में अवस्थित होते हैं। मूल गुफा आदि के आगे मिट्टी, पत्थर की साधारण दीवारें खड़ी की जा सकती हैं। मूल रूप में गोन्पा की परिकल्पना या भावना आत्मिक अधिक और सामाजिक कम है। समाज से दूर एकान्त स्थान और कठिन परिस्थितियों में वास करके बौद्धिक उद्देश्य की परिपूर्ति और आध्यात्मिक शक्ति की प्राप्ति गोन्पा के मूल उदेश्य रहे हैं। इस तरह मूलतः गोन्पा न मंदिर का पर्यायवाची है न विहार का। वहां न तो मंदिर की सी मूर्ति स्थापित होती है, न आहार–विहार की व्यवस्था होती है। वहां साधक रात–दिन, प्रातः सायं ध्यानरत रहता है।

तथापि, कालान्तर में गोन्पा की मौलिक भावना और आशय तथा रूपाकार में पर्याप्त परिवर्तन आया है। आज गोन्पा एक बस्ती है जहां एक से अधिक लामा या भिक्षु तथा भिक्षुणियां अथवा बौद्ध सन्यासिनियां रहते हैं और धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं। यहां धार्मिक साधना का समावेश तो है परंतु एकान्तता की अनिवार्यता नहीं है। वहां धर्मशासन है। एक मुख्य लामा है, उसके नीचे अन्य लामा, छोटे लामा, भिक्षु और शिक्षु हो सकते हैं। एक गोन्पा में अनेक भवन, मकान या कक्ष हो सकते हैं। गोन्पा के सभी निवासी धार्मिक आस्था से जुड़े होते हैं परंतु रीति नीति और विश्वास की स्वतंत्रता होती है। यहां लामा सन्यासी तो होते हैं परंतु वे सभी उपसम्पदा गृहीत भिक्षु अर्थात ब्रह्मचारी नहीं होते। अनेक लामा कृषि कार्य करते हैं और गृहस्थाश्रम अपनाए हैं, रहते गोन्पा में हैं। इस तरह गोन्पा की मंदिर या विहार से भिन्न स्थिति है।

ताबो गोन्पा :–

जनजातीय क्षेत्र के अनेक महत्वपूर्ण गोन्पाओं में स्पिति के मुख्यालय काज़ा से 47 किलोमीटर दूर स्पिति नदी के बायें किनारे स्थित ताबो गोन्पा कई दृष्टियों से विशिष्ट है। यह पहला बड़ा गोन्पा है जो पहाड़ के शिखर की बजाय समतल मैदान पर स्थित है। यह गुफा और निर्माण शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। क्षेत्र विस्तार की बिना पर यह सबसे बड़ा गोन्पा है। यह भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के नियन्त्रणाधीन है तथा युनैस्को के अंतर्गत यह 'विश्व दाय (हैरिटेज) स्थान' घोषित हुआ है। सम्भवतः यह जनजातीय क्षेत्र का सबसे प्राचीन गोन्पा है जो 996 सदी ईस्वी में रिन–छेन–ज़ङपो (रत्नभद्र) द्वारा बनाया गया माना जाता है। गोन्पा परिसर लगभग 96 मीटर लंबी, 80 मीटर चौड़ी और दो मीटर ऊंची मिट्टी और पत्थरों के गारे की दीवारों के आयताकार घेरे से घिरा हुआ है। इसके प्रमुखतः नौ कक्ष हैं :–

1 चुग–लग–खङया दु–वाङ

यह मुख्य या सभा कक्ष है। इसमें नम–पर–स्नङ–म्ज़द अर्थात वैरोचन की चार शरीरों वाली पूरे आकार की मूर्ति स्थापित है। चारों शरीरों की पीठें एक दूसरे से जुड़ी हैं, परंतु पूर्ण अग्रभाग चारों दिशाओं की ओर निर्दिष्ट हैं तथा विधि–चक्र मुद्रा में चौकड़ी मार कर बैठे हैं। भूमि से लगभग दो मीटर ऊपर दीवारों पर देवताओं की बत्तीस आकृतियां चित्रित हैं। दीवारों पर अन्य चित्र भी चित्रित हैं। इसे समाधि–कक्ष या अभिषेक कक्ष भी कहते हैं। दीवारों के इन बत्तीस चित्रों

को स्नलग्रूव ने 'वज्र धातु मण्डल' के देवता कहा है परंतु फ्रेंके ने इन्हें (यद्यपि कुछ संदेह के साथ) हिन्दुओं के तेंतीस देवता कहा है। गणेश का चित्र दरवाज़े पर मिटा हुआ है। फ्रेंके का यह भी कहना है कि उस समय लामाओं में से कोई भी इनकी व्याख्या नहीं कर सका था।

2 सेर–लङ अर्थात ग्सेर–गी–ल्हा–खङ

सभा कक्ष की बायीं ओर का पहला कक्ष ग्सेर–गी–ल्हा–खङ = सेर–ल्हा–खङ = सेर – लङ अर्थात 'सोने का देवालय' कहलाता है। पहले यह स्वर्ण जल मंडित था अब साधारण कक्ष है क्योंकि सोलहवीं शताब्दी में लद्दाख के राजा सेंगे–नमग्यल ने इसको नया रूप दिया है। आयताकार कक्ष चार खंभों पर खड़ा है और इसकी दीवारें और अंदरूनी छत सुन्दर चित्रों से सुसज्जित हैं। पृष्ठ की दीवार पर भूमिस्पर्श मुद्रा में बुद्ध की आकृति यहां का मुख्याकर्षण है।

3 चिलखङ अर्थात द्क्यिल–खङ

बायीं ओर का दूसरा कक्ष चिलखङ अर्थात मण्डल कक्ष सेर–लङ के पीछे है और सबसे छोटा कक्ष है। इसलिए इसकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। छत से टपकते पानी के कारण भित्ति चित्रों की आभा क्षीण हो चुकी है। यह दीक्षा कक्ष है जहां शिक्षुओं को अंतिम अभिमन्त्रण दिया जाता है।

4 चम्बा–चिबो

चम्बा चिबो वास्तव में 'जम्पा–छेनपो' का तद्भव रूप है। मूलतः इस कक्ष का भोटी भाषा में नाम 'व्यमस–पा–छेन–पोई–ल्हा–खङ' है। तिब्बती में 'व्य' का उच्चारण 'ज' होता है। यह कक्ष बोधिसत्त्व मैत्रेय को समर्पित है जिसकी लगभग छह मीटर से ऊंची भव्य मूर्ति मंदिर में स्थापित है। दीवारों पर बुद्ध के अनेक अन्य चित्र प्रस्तुत हैं। मूल कक्ष की दायीं ओर का यह प्रथम कक्ष है। इस देवालय के प्रवेश द्वार पर उकेरी गणेश की मूर्ति हिन्दू और बौद्ध धर्म के बीच मूलभूत समभाव का प्रतीक है।

5 डोम–तोन

यह मुख्य कक्ष की दायीं ओर का दूसरा कक्ष श्री दीपंकर 'अतीश' के शिष्य डोम–तोन (लिखित रूप ब्रोम–स्तोन) के नाम पर स्थापित किया गया है जो का–दम–पा सम्प्रदाय का संस्थापक था। इसका मूल भवन पत्थर के चबूतरे पर स्थापित एक ऊंचे काष्ठ स्तम्भ पर खड़ा किया गया है। इसके काष्ठ–द्वार पर धर्म–चक्रप्रवर्तन मुद्रा में बुद्ध विराजमान हैं। दीवारों पर भी बुद्ध को भूमि–स्पर्श मुद्रा में दिखाया गया है। अन्य बोधिसत्त्व के चित्र भी अंकित हैं।

6 गो–खङ

यह एक छोटा सा कमरा है जो 'टणामणा' धार्मिक पूजा के लिए प्रयुक्त होता है। इसके अंदर एक लकड़ी का स्टूल है जिस पर सत्तू से बनाई मूर्तियां रखी जाती हैं। पूजा की पात्र काली है जिसकी मूर्ति चबूतरे पर रखी जाती है। दीवारों पर अनेक चित्र अलंकृत हैं। इसे महाकाल वज्र भैरव का कक्ष कहते हैं। दीवारों पर घोड़े पर सवार काल के अनेक चित्र हैं। भय के कारण लोग यहां कम ही जाते हैं।

7 लंकर–चुङ

लंकर– चुङ (लिखित रूप ल्हा–खङ–द्कर–व्युङ) 'श्वेत देवगृह' एक और छोटा सा चौकोर कमरा है जो चार गोल लकड़ी के खम्भों पर खड़ा है। पूर्व की ओर छोटा सा लकड़ी का प्रवेश द्वार है। पश्चिम दीवार पर भूमि स्पर्श मुद्रा में बुद्ध अलंकृत है। उसकी बायीं ओर बोधिसत्त्व बैठा है जिसके हाथों में खड्ग और ग्रन्थ हैं। यहां भिक्षुणियों को दीक्षा दी जाती है।

8 ज़ल–मा

यह चार खम्भों पर आधारित चौकोर कक्ष है। यह मुख्य कक्ष से लगता हुआ बाहर की ओर का कमरा है। इसके चित्र हाल ही के बने हैं। इसलिए इन्हें कोई महत्व नहीं दिया जाता।

9 लङ–छेदबो

यह चौकोर कमरा है जिसमें तंग चौड़ाई का गर्भगृह है जो छह खम्भों पर खड़ा है। इसकी छत के अंदरूनी भाग पर सुन्दर चित्रकारी की गई है। इसकी दीवारें बुद्ध की अनेक मुद्राओं में प्रदर्शित चित्रों द्वारा अलंकृत हैं।

ताबो बौद्ध विहार रिन–छेन–ज़ङपो द्वारा तैयार किए गए 108 बौद्ध विहारों और मंदिरों में से एक है और महत्व की दृष्टि से ठोलिङ महाविहार के बाद यह दूसरा प्रतिष्ठान है। रिन–छेन–ज़ङपो उन इक्कीस नौजवान विद्वानों में से एक है जिन्हें पश्चिमी तिब्बत के गुगे राज्य के राजा अखोर–रे ने, जो बाद में ये–शेस–ओद के नाम से विख्यात लामा बना, बौद्ध धर्म के अध्ययन हेतु भारत भेजा था। रिनछेन ज़ङपो और लेक–पई–शे–रप के अतिरिक्त शेष सभी विद्वान अपना अध्ययन पूरा करने से पहले ही मर गए थे। रिन–छेन–ज़ङपो ने अपना अध्ययन भारत में पूरा करने के बाद प्रमुखतः दो विषयों पर विशेष ध्यान दिया। उसने बौद्ध धर्म से संबंधित अनेक संस्कृत और पाली भाषाओं की पुस्तकों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया और लोचावा–छेनपो अर्थात महानुवादक कहलाया। उसने अनेक मंदिरों तथा बौद्ध विहारों का निर्माण किया जिन्होंने पश्चिमी तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

ताबो बौद्ध विहार के सभी कक्षों में स्थापित भव्य मूर्तियों के अतिरिक्त दीवारों पर उकेरे चित्र और बौधिक तथा आध्यात्मिक उदेश्यों से परिपूर्ण लेख यहां के अन्य प्रमुख आकर्षण हैं। फ्रेंके ने इन प्रलेखों पर विस्तृत विवरण दिया है। (Antiquities of Indian Tibet, 1972, पृ. 41) फ्रेंके का मानना है कि मुख्य कक्ष की दीवारों पर, जिसे नम–पर–स्नङ–म्ज़द कक्ष भी कहते हैं, फर्श के साथ कुछ ही ऊपर लिखे गए आलेख विशेष रूप से उन लोगों को पढ़ने के लिए हैं जो चौकड़ी मार कर फर्श पर बैठते हैं और ये मंगल कामना और अभिशाप से संबंधित हैं ताकि लोग बुरा काम न करें और शुभ काम करके नेकी कमाएं। ऐसे आलेखों में से एक ऐतिहासिक महत्व का है। टुच्ची ने अपनी पुस्तक Indo-Tibetica III, पृ. 146 पर इसका अंग्रेज़ी में अनुवाद इस प्रकार किया है –

"इस मंदिर का निर्माण पूर्वज बोधिसत्त्व ने पहली बार वानर वर्ष में किया था और अब छियालीस वर्षों के बाद राजशाही वंशज महान व्यङ–छुब–ओद ने ज्ञानोद्दीप्ति की भावना से प्रेरित होकर इस मंदिर की मुरम्मत की है।"

व्यङ–छुब–ओद गूगे राज्य के सम्राट स्रोङ–डे के भाई अखोर–रे के पुत्र ल्हा–ल्दे का पुत्र था। स्रोङ–डे बाद में 'ये–शेस–ओद' के नाम से महान लामा बना। उसके दो पुत्र भी नाग–राजा और देव–राजा नाम से लामा बने। अखोर–रे (ये–शेस–ओद) राज–पाठ अपने छोटे भाई स्रोङ–डे को सौंप कर बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से भ्रमण करते हुए दूर देश तुर्किस्तान निकल गए। वहां गरतोग के मुसलमान राजा ने उसे कैद किया। उसकी मुक्ति के लिए यह शर्त रखी गई कि या तो वह बौद्ध धर्म छोड़ दे या उसके शरीर के वज़न के बराबर सोना अदा किया जाए। ये–शेस–ओद धर्म छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। उसका पोता ब्यङ–छुब–ओद जब सोना लेकर वहां पहुंचा तो तोलने पर सोने का वज़न उसके सिर के वज़न बराबर से कम हो गया। तब ये–शेस–ओद ने इच्छा व्यक्त की कि "मैं तो इस बड़ी आयु में यों भी मर ही जाऊंगा, इस सोने को भारत से बौद्ध विद्वानों के आमंत्रण पर खर्च किया जाए"। परिणामस्वरूप इस सोने से भारत के अतीश को बुलाया गया। ये–शेस–ओद शत्रु की जेल में वहीं मर गया।

टुच्ची और स्नलग्रूव का मानना है कि "अतीश के गूगे राज्य में 1042 ई. के आस–पास पहुंचने से कुछ ही पहले लगभग 1040 ई. को ये–शेस–ओद का देहान्त हो गया था। यह मानते हुए कि जब व्यङ–छुब–ओद ने इस मंदिर की मुरम्मत की तो ये–शेस–ओद मर चुका था, ताबो बौद्ध विहार के निर्माण की निकटतम तिथि 996 सदी ईस्वी बनती है। क्योंकि वानर–वर्ष हर बारह

वर्ष के बाद आता है इसलिए इसके निर्माण की दूसरी तिथि 1008 ई0 हो सकती है। (DL Snellgrove-Buddhist Himalaya, New Yark, 1957 p 184) बाद में हुए शोध कार्य के आधार पर सन 996 ई. ही ताबो विहार के निर्माण की तिथि सही सिद्ध हुई है। इसी बिनाह पर ताबो विहार का सहस्राव्दी समरोह 1996 में 20 जून से लेकर 5 जुलाई तक आयोजित किया गया। प्रदेश के उस समय के मुख्यमंत्री श्री वीरभद्र सिंह ने समारोह का उद्घाटन किया तथा महामहिम दलाई लामा ने इस दौरान कालचक्रतंत्र का अभिषेक प्रदान किया। इस तरह इस अवसर पर हज़ारों की संख्या में देश–विदेश के पर्यटकों, सैलानियों, यात्रियों और बौद्ध धर्म अनुयायियों ने न केवल महामहिम दलाई लामा के उपदेशों और प्रवचनों का लाभ उठाया अपितु महान पुण्य भी कमाया।

इस तरह ताबो बौद्ध विहार ने पिछले एक हज़ार वर्षों में न केवल बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार के प्रति महत्वपूर्ण भूमिका निभाई अपितु अनेकों ऐतिहासिक घटनाक्रम भी देखे हैं। स्पिति नदी के किनारे समतल भूमि और शान्त वातावरण में स्थित इस विहार के अथाह पुस्तक भण्डार का लाभ उठाते हुए अनेकों भारतीय और तिब्बती विद्वान और अनुवादक महत्वपूर्ण शोध कार्य और अनुवाद कार्य करते रहे हैं। देश विदेश के हज़ारों चित्रकारों, मूर्तिकारों और कलाकारों ने धार्मिक और जातक कथाओं से संबंधित विशिष्ट पात्रों के मनोहारी, सुन्दर तथा आकर्षक भित्ति चित्र तथा मूर्तियां तैयार करके न केवल बौद्ध विहार की शोभा बढ़ाई है परंतु अनेक संग्रहालयों को समृद्ध किया है। बहुविध लामाओं, भिक्षुओं, साधू–संतों, महात्माओं और सन्यासियों के लिए यह विहार न केवल शरण–स्थल रहा है, अपितु उनके आध्यात्मिक चिंतन, मनन–स्मरण और स्वाध्याय का भी विशिष्ट केन्द्र रहा है। बौद्ध विहार के विभिन्न कक्षों में प्रतिस्थापित आदमकद से भी अधिक ऊंची प्रतिमाएं, भित्तिचित्र, भीतरी छतों के चित्रांकन, प्रवेश द्वारों पर सुरुचिपूर्ण अलंकरण जहां एक ओर सामान्य यात्रियों और सैलानियों के आकर्षण के केन्द्र रहे हैं वहीं दूसरी ओर वे बुद्धिजीवियों और विद्वान समीक्षकों के लिए शोध के विषय रहे हैं।

वास्तव में ताबो बौद्ध विहार की स्थापना के बहुत प्राचीन समय से ही यह स्थान सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक और व्यापारिक महत्व का स्थल रहा है। आदिकाल से लेकर दो प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय राजमार्गों के चौराहे में स्थित होने के कारण ताबो गांव अंतर्देशीय व्यापार का केन्द्र तथा सामाजिक गतिविधियों और धार्मिक आस्थाओं का कुतूहलपूर्ण स्थान रहा है। इन दोनों राजमार्गों में से प्रथम मार्ग पश्चिम से पूर्व की ओर कश्मीर और गूगे राज्य से होता हुआ चन्द्रभागा, स्पिति और सतलुज नदी घाटियों में से गुज़रता था। यह वह मार्ग था जिसे रिन–छेन–जङपो ने भारत जाते हुए अपनाया था। दूसरा मार्ग दक्षिण में भारत की मुख्य भूमि को उत्तर में लेह लद्दाख से होता हुआ मध्य एशिया के देशों से मिलाता था। यही मूलतः प्राचीन हिन्दुस्तान तिब्बत का मूल मार्ग रहा है। जो अब राजमार्ग नंबर 21 के नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि यह पठानकोट–मण्डी–कुल्लू–मनाली–रोहतांग–केलंग–लेह मार्ग रहा है परंतु आदिकाल से मनाली में स्थित ज़गातखाने की भारी सीमा शुल्क और कठिनाइयों से बचने के लिए व्यापारी लोग बारालाचा पर्वत शिखर पर पहुंच कर मार्ग बदलते हुए चन्द्रा नदी के किनारे से होते हुए स्पिति और सतलुज नदियों के साथ ताबो होते हुए मैदानों में पहुंचते थे। 'ताबो' का मूल शब्द ता–फो (अर्थात घोड़ा पशु) है, जिसका मूल अर्थ घोड़ों की मार्किट या मण्डी है। इस तरह बौद्ध विहार की स्थापना से पहले ताबो ऊन, पशम, भेड़ बकरी, घोड़े पशुओं आदि के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था।

देवप्रस्थ भवन,
ढालपुर, कुल्लू।

पटन घाटी में प्रचलित कुछ लोकोक्तियां

–डॉ. अशोक कुमार
एवं दौलत ठाकुर

गरफी मईरीति सऊ ढेरे	–	नाच न जाने आंगन टेढ़ा।
तीह में टोंग–टोंग	–	अस्तित्वहीन
ज़वर में लोढ़	–	अज्ञान आदमी।
हडसरो कग	–	(हडसर का कौआ) अकेला खाने की आदत
मनीउ बेन्डी	–	अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का आदमी।
मतांज़ाबी तांज़ी शुजा	–	मन चाहे मिलने पर गर्व करना।
खुईउ मेकडू ढेरे ही ब्रंई	–	कुत्ते की दुम टेढ़ी ही रहती है। अर्थात शैतान के स्वभाव को बदला नहीं जा सकता।
घाईंउं घव्वण	–	सरल स्वभाव वाला
म्दूंज़ा भाउड़ी कुयां मे थीं दुम्बी	–	कामचोर बहू कुयां (फरवरी में मनाया जाने वाला त्यौहार) के दिन काम करती है।
घ्यों मशूइत अले हब्सी	–	अपना न हो तो दूसरों का क्या भरोसा।
सामारी काठुल इज़्ज़त शुबी	–	श्राद्ध में कौए की भी इज़्ज़त होती है।
करा शुईन्त दोई दोफड़ो अन्दरे	–	अगर गिरि हो तो अखरोट के छिलके के अन्दर
तेल तूम तरछ़ी	–	तेल पी सकता है। अर्थात गुणवान व्यक्ति ही अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर सकता है।
योह (पुत्र) में तरसी, बङ (बैल) में मरसी	–	पुत्र के बिना काम हो सकता है बैल के बिना नहीं
मिन्धलौ बङ	–	इकलौता
खुई में देशां ग्वा ल रज़ा	–	जहां कुत्ते न हों वहां लोमड़ी राज करती है।
घ्यों धियाड़ा मांजी अदित कोंज़ों	–	अगर बुरा दिन आए तो पैर का जूता भी सीधा
पुल खई शुबी	–	हो जाता है।
मदम्म कडू बे बेन्डीउ घोड़ी टुनिया	–	कपूत से तो नदी का पत्थर रखना ठीक है।
औख अदित्त कारा बि बा कुड्री लेपी	–	बुरा दिन आए तो गधे को बाप बोलना पड़ता है।
ल्हेई उड्रा ज़ाअनू घाड़े	–	नाक में पीला फूल लगाने पर सोने की बेसरी के समान प्रतीत होता है।
रहां दजी तबी सन्ज़ी	–	घोड़ा गिरने के बाद सीढ़ी बनाना अर्थात नुकसान होने के बाद संभालना।
खिले घट्टा भूतो बारी	–	खाली घराट में भूतों का वास होता है।
योह बा बे लामे शुइत बा बी बा कुट्री लेबी	–	बेटा बाप से लम्बा हो जाए तो भी बाप को बाप ही बोलना पड़ता है।

कुकुमसेरी कालेज
एवं गांव बरदंग

लाहुली कृषक वर्ग का भेड़–बकरियों के साथ सामंजस्य आखिर कब तक?

– विकास ओथङवा

हमारी अर्थव्यवस्था पूर्णतया कृषि पर आधारित है जिसमें पालतू पशुओं की अपनी एक अहम भूमिका होती है। कृषि की परिभाषा तब तक अधूरी रह जाती है जब तक कि हम उसमें विभिन्न प्रकार के पालतू पशुओं को शमिल नहीं करते हैं। अर्थात खेती–बाड़ी व पालतु पशु एक दूसरे के पूरक हैं। भौगोलिक परिस्थितियों के चलते हमारी आय का स्रोत पूर्ण रूप से कृषि पर आधारित है। प्राचीन काल से हमारे पूर्वज विभिन्न प्रकार के पालतू पशुओं व खेती–बाड़ी से जुड़े रहे जैसे भेड़–बकरियों से प्राप्त ऊन द्वारा बनाए विभिन्न प्रकार के वस्त्र व खेतों से प्राप्त अन्न जौ,ब्रफो इत्यादि। उस समय इनका इस्तेमाल ज़्यादातर अपने लिए हुआ करता था लेकिन कुछ लोग इससे प्राप्त माल का बोदेश (तिब्बत) से सामान की अदला–बदली द्वारा व्यापर भी किया करते थे। यानि भेड़–बकरियां लाहुली जीवन–शैली का एक अभिन्न अंग हुआ करती थी लेकिन धीरे–धीरे समय ने करवट बदली और कृषि के क्षेत्र में नए बदलाव आए पुराने फसलों की जगह अब लाभ दिलाने वाली फसलें आ गई जिससे किसानों की आर्थिक स्थिति में क्रान्तिकारी बदलाव आया। इससे किसानों का लाभ दिलाने वाली फसलों की ओर झुकाव होना स्वाभाविक ही था। इस बदलाव का असर पालतु पशुओं, खासकर भेड़–बकरियों पर भी हुआ जो कि कुछ समय पहले तक कृषि का एक अभिन्न अंग हुआ करते थे। आज इनकी संख्या धीरे–धीरे घट रही है। एक समय था जब प्रत्येक परिवार के पास सैंकड़ो भेड़–बकरियां हुआ करती थीं लेकिन अब इनकी संख्या नाममात्र ही रह गई है। ज़्यादातर परिवारों ने तो लगभग समाप्त ही कर दिया है, बस कुछ ही परिवारों के पास उंगलियों पर गिने जा सकने के करीब ही भेड़–बकरियां रह गई हैं। ग्रीष्म ऋतु में जब कृषि का कार्य आरम्भ हो जाता है तब जिनके पास भेड़ें हैं वह इनको इकट्ठा करके गाहर (जंगल) भेज देते हैं और इनकी देखभाल के लिए एक सांझा गड़रिया जिसे स्थानीय भाषा में पोवल कहते हैं, रख लेते है ताकि कृषि कार्य में विघ्न उत्पन्न न हो। वहीं शरद ऋतु के आते ही परिवार के एक सदस्य का सारा दिन इनकी देखभाल में लग जाता है। अब प्रश्न उठता है कि इनकी संख्या लगातार क्यों घट रही है? इनकी घटती संख्या के कई कारण हैं, जैसे लाभ प्रदान करने वाली फसलों के आ जाने के कारण इनके देखभाल के लिए समय निकालना मुश्किल होने लगा जिससे कई परिवारों ने इनको बेचना शुरू कर दिया, वहीं ग्रीष्म ऋतु में इनकी बजह से कई परेशानियां पैदा हो जाती हैं जैसे इनके गुम हो जाने पर घर के एक या दो सदस्य का पूरा दिन इनको ढूंढने में लग जात है। इसके अलावा अगर भेडों को जंगल में रखा हो तो पोवल (गड़रिए) को राशन पंहुचाने का ज़िम्मा भी भेड़ों के मालिक का ही होता है। वहीं अच्छी फसल के उत्पादन के फलस्वरूप पैसा आने के कारण लोग अब गर्म कपड़े बाज़ार से खरीद कर लाते हैं जो कि ऊन से बने कपड़ों की अपेक्षा ज़्यादा टिकाऊ होते हैं। परिवार में सदस्यों की घटती संख्या तथा घास व चारे की कमी भी इनके घटने का कारण है। वैसे हम सभी जानते हैं कि इनसे प्राप्त गोबर की खेती–बाड़ी के क्षेत्र में बहुत आवश्यकता होती है लेकिन इस गोबर की मांग को बहुत हद तक अन्य पालतू पशु जैसे गाय, बैल, घोड़े इत्यादि पूरी कर देते हैं। इसके अतिरिक्त कड़ी मेहनत के बावजूद इनसे प्राप्त आय नाममात्र की ही होती है। इन कारणों के अतिरिक्त समाज व परिवार में इनको रखने व बेचने (समाप्त करने) के पक्ष में दो वर्ग सामने आते हैं। एक वर्ग बुर्जुगों का और दूसरा वर्ग इनके बाद की पीढ़ी यानि नौजवानों का और दोनों की अपनी अलग–अलग राय है। जहां बुर्जुग–वर्ग इन्हें बेचने के सख्त खिलाफ है, वहीं दूसरी ओर नौजवान वर्ग इसे कई तरह के तर्कों द्वारा बेच देने के पक्ष में हो बुजुर्गों की राय में इनसे प्राप्त गोबर मिट्टी को बहुत ही उपजाऊ बनाता है जिससे अच्छी फसल का उत्पादन होता है तथा साथ में सूखी गोबर होने के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना बहुत आसान होता है। इनसे प्राप्त ऊन के द्वारा पहनने के लिए बने वस्त्र व सोने के लिए दुङगेर, थोबि इत्यादि अत्यधिक ठण्ड़ से हमारी रक्षा करते हैं। इसके अतिरिक्त शरद ऋतु में मांस

डालकर तैयार किया जाने वाला स्थानीय व्यंजन छति (सूप) बुर्जुगों व सभी के लिए अच्छा माना जाता है। इन सब कारणों के अतिरिक्त बुर्जुग वर्ग इसलिए भी इनको बेचना नहीं चाहता क्योंकि वह बचपन से इनके साथ जुड़े रहे हैं। उनका इन पशुओं के प्रति खास लगाव है, अब हम चाहे इसे उनका पशुओं के प्रति अपनापन कहें या लगाव जिन्हें वह किसी भी हालत में अपने से अलग नहीं कर सकते। वहीं दूसरी ओर नौजवान पीढ़ी इनको बिल्कुल समाप्त करने व बेच देने के पक्ष में है। उनके अनुसार गोबर की मांग को दूसरे पशु असानी से पूरा कर सकते हैं तथा साथ ही इनसे बच्चे हुए घास व श्रेन (बेली) के पेड़ से प्राप्त रिड़ि (चारा) के द्वारा गायों से दूध व बैलों, घोड़ों इत्यादि को कृषि कार्य करने के लिए ताकतवर व ह्रष्ट–पुष्ट बनाया जा सकता है, जिस से कृषि व परिवार का भला ही होगा। ऊन से बने वस्त्रों की अपेक्षा बाज़ार से खरीदे वस्त्र ज़्यादा टिकाऊ व साथ में गर्मी भी प्रदान करते हैं। आज जब लोगों के पास आय के साधन बढ़े हैं तो मांस का स्वाद लेने के लिए खरीदकर भी लाया जा सकता है या एक–दो भेड़ घर में सर्दियों के लिए खासतौर पर रख सकते हैं या रखा जा सकता है, इसके अतिरिक्त कई तरह के तर्कों द्वारा नौजवान पीढ़ी को इनकी देखभाल में व्यतीत होने वाले समय को किसी दूसरे कार्यों में लगाए जाने के पक्ष में वकालत करते हुए भी देखा जा सकता है। अगर तो वह गर्मी का मौसम है तब तो मान सकते हैं कि कृषि कार्य है लेकिन सर्दी के मौसम में समय बचाने का तर्क देना समझ में नहीं आता। शायद नौजवान पीढ़ी को अपने मनोरंजन के लिए खाली समय चाहिए। खैर, अभी तो इनकी देखभाल का ज़िम्मा घर के बुजुर्ग सदस्यों पर है जो इनको बेचने के पक्ष में बिलकुल भी नहीं हैं। अब कुछ समय से हमारे क्षेत्र में सक्रिय विभिन्न सत्संगी संगठनों के प्रभावाधीन कई सारे लोग शाकाहारी हो गए हैं। जो कि एक शुभ संकेत है जिससे पशुओं के मांस का स्वाद लेने वालों की संख्या घटेगी, साथ ही निर्दोश पशुओं की हत्या भी काफी हद तक कम होगी। हां अगर शौक के तौर पर एक या दो भेड़ पालना चाहें या फिर सर्दियों में इनका मांस खाने के लिए रखना चाहें तो फिर वह अलग बात है। यहां पर कुछ प्रगतिशील कृषक वर्ग का मत है कि भविष्य में व्यावसायिक आधार पर इनकी संख्या बढ़ भी सकती है, लेकिन एक बात तो तय है कि कुछ सालों में ये प्यारे पालतू पशु हमारे क्षेत्र से बिलकुल ही समाप्त हो जाएंगे या धीरे–धीरे समाप्त हो सकते हैं।

अर्न्तदृष्टि

मेरे घर के सामने एक छोटा सा मकान है। यह अभी अधूरा है। इस मकान में एक महिला अपने दो छोटे–छोटे बच्चों के साथ रह रही है। बड़ी लड़की है सात साल की और छोटा लड़का है पांच साल का। यह दोनों बच्चे प्रायः मेरे आते–जाते मिलते रहते हैं, इस प्रकार इन बच्चों से जान पहचान हो गई है, थोड़ी सी।

एक दिन मैं प्रातः छह बजे उठ कर घूमने जा रहा था कि ये दोनों बच्चे मिल गए। दिसम्बर मास के ठण्ड के दिन थे। दोनों बच्चे सूती कपड़ा पहने, ठण्ड से सिकुड़ते हुए मुझसे केवल बीस रुपये की मांग कर रहे थे क्योंकि माता को किसी नगर में जाना था और किराया देने के लिए चाहिए था। सो, मैंने झट से अपने जेब में हाथ डाला और बीस रुपये का एक नोट निकाल कर उनको थमा दिया।

थोड़ी देर बाद मैंने सोचा क्या सचमुच यह पैसे उनकी माता को किराया के लिए चाहिए थे या फिर ये पैसे लेकर सिगरेट खरीद कर पी लेंगे तथा अपनी सेहत को खराब करेंगे। नहीं ऐसा नहीं हो सकता। बच्चे झूठ नहीं बोलते हैं, सच में ऐसा ही होगा। मेरे मन ने कहा। दूसरी ओर बुद्धि ये कहती थी कि ये बच्चे झूठ बोलकर सिगरेट पीना चाहते हैं और अपने स्वास्थ्य को और बिगाड़ना चाहते हैं।

ऐसा तर्क–वितर्क मन के परदे पर चलता रहा। ह्रदय कहे कि मैं तर्क की भाषा को नहीं जानता। मैं दूसरे के दर्द को जानता हूं। बुद्धि अर्थात विज्ञान कह रहा था कि निश्चय ही ये लड़के सिगरेट के लिए पैसा मांग रहे थे। वे उन पैसों से स्वास्थ्य को और खराब करेंगे। ह्रदय और बुद्धि का यह अपना अपना तर्क था। वास्तव में दोनों ही ठीक थे। किसी राष्ट्र एवं व्यक्ति के लिए दोनों का सहारा अति आवश्यक है। एक के अभाव के चलते जीवन की गाड़ी को सुचारू रूप से चलाना कठिन है। अतः ह्रदय अथवा भाव और विज्ञान दोनों की आवश्यकता है।

सुखदास चित्रकार

कुलूत जनपद में नागों एवं अप्सराओं का वर्चस्व

– तेज राम नेगी

आठवीं कड़ी में आपने पढ़ा –

भिक्षुक भेस में काली नाग और उसका भक्त नड़ शिरढ़ गांव की ओर जाते हैं। वहां शिरढ़ राणे ठाकुरों के साथ संघर्ष और फलस्वरूप आए बाढ़ में नड़ की मृत्यु तथा नड़ की लड़की के निवेदन पर काहिका उत्सव की परम्परा आरम्भ की और यह भी कि काली नाग ने ही सात बहिन देवांगनाओं को कुलूत के शिखरों में स्थापित किया। अब पढ़ें काहिका उत्सव का विवरण –

नवीं कड़ी –

शिरढ़ का काहिका उत्सव

सर्वप्रथम नए सम्वत के प्रथम दिन देवते के रथ को सजाया जाता है। दूसरे दिन 8 बजे रथ को बाजे–गाजे के साथ 'नागणी–सौह' ले जाया जाता है। वहां पर देवता का गूर (चेला) अपनी 'देवभार्था' में यह बताता है कि हमारा जन्म कहां–कहां हुआ तथा क्या–क्या कार्य किए हैं तथा वर्षोहा में अगामी वर्ष में होने वाली प्राकृतिक आपदाओं, घटनाओं तथा अन्य भविष्यवाणी करता है। उसके उपरान्त देवता का पुरोहित नये साल का वर्ष–फल बताता है। अनन्तर चार पौथै चावल तथा साथ में गुड़ और दक्षिणा ब्राह्मणों को दान देता है। दिन को दो भार चावल पकाया जाता है। हारियान, बाजे–नवाज़ तथा बालक लोग उस भोजन को खाकर देवता के साथ आते हैं। देवते के रथ को तथा उसके सारे सामान को भण्डार में बन्द कर देते हैं।

वैशाख मास के प्रथम गुरुवार को मेला काहिका का दिन पुरोहित द्वारा नियत किया जाता है। इसी दिन को देवता भी स्वीकृति देता है।

फिर दूसरे गुरुवार को देवते के कार्य हेतु मशालें एवं सीढ़ियां काटी जाती हैं। देवते के बढ़ई को इस कार्य के लिए चार पौथे चावल तथा एक पौथे की भुंगड़ी दी जाती है, इन वस्तुओं के लिए एक पेड़ काटा जाता है। जिसमें 13 हाथ की सीढ़ी तथा बाकी लकड़ी की मशालें तैयार की जाती हैं।

तीसरे गुरुवार को देवते के ढोल, नगारे आदि बाजों को संवारा जाता है, उसके लिए चर्मकार को मज़दूरी 8 पौथे चावल दिए जाते हैं।

चौथे गुरुवार को हरिजन लिपाई की मिट्टी लाते हैं। देवते के वारी तथा शिरढ़ गांव की स्त्रियां मन्दिर की लिपाई करती हैं।

पांवचें गुरुवार को 'कोदरा' की रोटियां पका कर मिट्टी के घड़ों में डालकर ढेली नाम की जड़ी इसमें मिलाई जाती है, कुछ दिनों पश्चात 'सूर' (सुरा) तैयार की जाती है।

छटे गुरुवार को जिस पेड़ को सीढ़ी के लिए काटा गया था, उससे सीढ़ी की लकड़ी को इस देवता की पूरी हार वाले (शिरढ, भाट ग्रां तथा देवते के मुज़ारे) बड़े चाव से बाजे–गाजे के साथ मन्दिर की ओर ले आते हैं। इस सीढ़ी को तब तक गांव में नहीं लाते हैं जब तक गांव के पशु वन व खेतों से चर कर घरों में वापिस नहीं पहुंचते। इसके उपरान्त उस सीढ़ी को गांव की ओर ले आते हैं और मन्दिर के निकट पहुंचाते हैं। गांव वाले आटे की पिन्दलियां फैंकते जाते हैं। फिर मन्दिर के पास सीढ़ी पहुंचाई जाती है। यहीं पर इस लकड़ी में सीढ़ियां निकाली जाती हैं। बाकी जनता मन्दिर की तीसरी सीढ़ी निकालते हैं तथा प्रथम (शिढ़) सीढ़ी के स्थान पर नई (शिढ़) को लगाते हैं। लकड़ी की शौकटें (कटी हुई बेकार लकड़ी) पुजारी ले जाता है, बदले में वे बढ़ई को दो 'जूड़ी' तम्बाकू देते हैं।

सातवें गुरुवार को 'काहिका' मेला आरम्भ होता है। गुरुवार के तीन दिन पहले सोमवार को देवते की ओर से पांच मुख्य बजन्तरियों में एक के पास देवते का 'शेष' (बेठर आदि) देकर 'नौड़' तथा उसके परिवार को बुलावा भेजा जाता है। (आमन्त्रित किया जाता है)। फिर देवते की तरफ से पांच मुख्य जनों को (कारवारी) देवते का मुख्य स्थान 'खौल्ह' (खलिहान) में जाकर वहां के मुख्य द्वारपाल को एक पशु बलि दी जाती है। फिर वह पुरुष वहीं पर देवते की ओर से दो पौथे चावल पका कर भोजन करते हैं। फिर वहां से चल कर कराल में जाते हैं। वहां पर काली नाग देवते का

बौण (जंगल) है। वहां पर मुख्या 'चामनी' देवते के नाम पर धूपबत्ती चढ़ाता है। फिर दियार के छोटे वृक्ष को काटता है। इस पेड़ को धरती पर गिरने नहीं देते बाकी चामनी खड़े–खड़े ही उसको पकड़ने जाते हैं। क्रमवार चामनी, चार वृक्ष को काटने जाते हैं। और खड़े–खड़े ही उसको पकड़ने जाते हैं। फिर वहां से चल कर पांचों चामनी कराल गांव में आकर अखरोट के (पेड़) के सहारे रखते हैं और कराल गांव में कठियाले के घर में जौ और दो पौथे चावल को पकाकर चौथे पहर का भोजन खाकर शिरढ़ गांव की ओर प्रस्थान करते हैं। अगर किसी को 'दीर्घ शंका' या 'लघु शंका' की शिकायत हो जाए तो पांचवां चामनी उस लकड़ी (डाल्ह) को पकड़ता है। सायं सात या आठ बजे रोडा पर्वत के पास रखते हैं। यहां से फिर खाली मन्दिर के पास चले आते हैं। गांव वाले चौथे पहर 'नागणी सौह' को बाजे वालों के साथ जाते हैं और साथ में एक–एक लकड़ी जागरे के वास्ते ले जाते हैं। मूर्ति के पास सफाई तथा झाड़ बुहार करके साफ सुथरा कर देते हैं।

नागणी सौह से चलकर मंदिर के पास चले आते हैं। वहां पर आकर कारदार, पुजारी, गूर कठियाला तथा मुज़ारे और हारियान इकट्ठे होते हैं, जो कपड़ाकाहिका मेले में लगता है, उसे क्रमवार कुछ हिस्सों में फाड़ते हैं। सर्वप्रथम छोटे काहिके के लिए कपड़ा फाड़ा जाता है। उसके बाद अन्य जनेऊ तथा घार इत्यादि के लिए नौड़, नौड़न के लिए मलमल की चादर, छोटे भगवे की रंगाई की जाती है।

इसके बाद गांव शिम्ह से जो पुराना ढौऊंस आता है, बाजे बजन्तरी वालों के सत्कार के लिए, जो दोबारा देवते के प्रति झूणा देते हैं। बैन्ची गांव से भी वीरनाथ का गूर आता है।

सब जनता देवते की ओर से भोजन प्राप्त कर, कुछ देर बाद तकरीबन एक बजे देवता का 'दपोत' तथा काहिका की 'चानणी' तथा 'नरोल' निकलता है। तब गांव के लोग दो बड़े 'मशालें' तथा दूसरे छोटे–छोटे मशालों, बाजगियों के साथ मंदिर से निकल कर नागणी सौह की ओर जाते हैं। वहां पर देवता के गूर अपने–अपने देवता के आवाहन करते हैं या स्मरण करते हैं। तत्पश्चात देवता का गूर देवी के गूर को शेष देता है तथा जागरा जलाने का इशारा करता है। उसके बाद देवता का मलेघा गूर (मुख्य गूर) सब गूरों के आगे देऊखल (देऊ खेल) सब अस्लों (शांगल, कटारा इत्यादि) से देऊ खेल सम्पन्न करते हैं।

उसके बाद देवते का मलेघा गूर देवता वीरनाथ, बैन्ची और कराल के देवते के गूर को अपना शेष और सत्तू देकर 'नौड़' और 'नौड़न' को सत्तू द्वारा खेल करते हुए जाते हैं और जहां मलेघा गूर बैठा होता है, वहां ले आते हैं। वहां पर भी आकर सत्तू की होली खेली जाती है। कराल का बाजा लेकर देवता वीरनाथ का गूर 'रोडा ढौंग' से दियार की एक टहणी लाता है। फिर नौड़ 'कांसी' को बजाता हुआ देवता का गान करता है। उसके बाद नौड़न को नचाया जाता है। और वह नाचती है। उसके बाद देवता की चानणी और नरोल नौड़ के सपुर्द करते हैं और दियार की टहणी को भी नौड़ के सपुर्द करते हैं। नौड़ चानणी को क्रमवार चारों कोणों में बांधता है।

रात्रि तीन बजे उपरान्त मूर्ति के आगे देवते का पुरोहित और कारदार 'शान्तिपाठ' तथा पूर्णाहुति द्वारा उस स्थान की शुद्धि करते हैं फिर उसके बाद रोंड़ा पर्वत की जोगणी को पशु बलि दी जाती है तथा पाशा कोट के नीचे कायल के पास भी बलि दी जाती है। उसके बाद गूरों को दोबारा देवता के आवाहन कराया जाता है। तब गूर द्वारा उस चानणी को खड़ा करके उन चारों टहणियों को धरती में ठीक स्थान पर गाड़ दिया जाता है। फिर उस चानणी के नीचे नौड़ अपना शान्ति पाठ करता है। उस नरोल को चानणी के नीचे रखता है। तब नौड़–नौड़न जौ द्वारा छिद्रा का अन्वेषण करता है। नौड़न को जौ देकर अर्थात नौड़न जौ लेकर, पुजारी, कारदार तथा गुरों के पीछे से तीन चक्र लगाती है और कार्य सम्पन्न हो जाता है।

फिर देवते के गूर, पुजारी, कारदार, कठियाला आदि कारकून और आम देऊलू देऊनाच व देऊनाटी (हुलकी) करते हुए कार्य सम्पन्न करते हुए मन्दिर के पास आते हैं।

सर्वप्रथम देऊलू कार्यकर्ता चाहे वह सवर्ण हो या हरिजन, सभी एक दिन का उपवास (व्रत) रखते हैं। स्नानादि कर शुद्ध हो कर साफ–स्वच्छ वस्त्र पहनकर मंदिर पहुंचते हैं। वहां पहुंचकर बाजा–बजन्तरी अपने–अपने बाजे बजाते हैं। तब मंदिर में रखा हुआ देवते का रथ, जो कि 'भेखल' की लकड़ी का बना हुआ होता है, कारदार आदि कारकून मंदिर से बाहर निकाल कर, 'हिमरी' गांव

के एक कारकून, जो कि 'वनेटू' वंश से सम्बन्धित होता है, के सिर पर रख कर सोने या चांदी के अलंकरणों को ला कर बीच गांव में लाते हैं। जहां जोगणियों का मंदिर है। फिर देवते का 'सुनार' जो डुघीलग का रहने वाला है, वह देवते के सोने–चांदी के 'मुख–मोहरे' या छत्र आदि हैं, उनकी सफाई करता है। फिर कारदार आदि कारकून उन अलंकरणों को उस भेखल के रथ पर सजाकर और पुजारी आरती करता है। बाकी जनता भी आरती में सहयोग देते हैं। उसके उपरान्त कारदार वनेटू खानदान के मुख्य पुरुष के सिर में पगड़ी बांध कर पालकी रखी जाती है। फिर दिन भर, नाग खड़े होते समय भी पशु का वारणा दिया जता है। लीला या जिसे कुल्लवी भाषा में हुलकी कहा जाता है प्रातः दिन के 11 बजे तीन बार गांव में तथा चौथे फेरे में नागणी सौह में पहुंचते हैं। वहां पहुंच कर नौड़–नौड़न आगे आकर देवता का स्वागत करते हैं। फिर साथ चलकर काहिका स्थान पर पहुंचते हैं, तब नौड़ देवते के साथ छिद्रा करता है। तत्पश्चात नौड़, देवता का पुजारी, कारदार, गूर, कठियाला तथा अन्य कारकून देवनाच (देऊखली) करते हैं। उसके उपरान्त जिनते भी देवते इस काहिका में आए होते हैं, (बैंची का वीरनाथ, मन्दरोल का वीरनाथ, कराल का वीरनाथ, शिम्ह का थान, शिल्हीहार से नारायण, द्वाड़ा का विष्णु, हलाण का नाग, शेलड़ी का धूमल) यह सब देवता 'रोड़ा ढौंग' (जोगणी सौह) तक हुलकी खेलते हुए जाते हैं। इसी प्रकार यह मेला दिन भर बड़े उल्लास से मनाया जाता है। सायं पांच बजे के उपरान्त सब देवते का सामूहिक फेरा फिर रोडा ढौग (जोगणी सौह) तक लगाते हैं। उसके बाद सौह के ऊपरी भाग तक चल कर फिर वापिस सौह में आते हैं, जहां दियार का वृक्ष है, वहां नौड़ खड़ा होकर सब देवताओं का 'शेष' लेकर सिर पर धारण करता है। तब कारदार चार 'तीर' चारों दिशाओं में मारता है। जब पांचवां तीर मारने की बारी आती है तब पुजारी 'पंचरत्न' या नगद रुपया घी में भिगो कर नौड़ के मुंह में डालता है। तब पांचवां तीर छोड़ने पर नौड़ मूर्छित हो जाता है। फिर उसे उठाकर बड़े समारोह के साथ काहिके के नीचे लाया जाता है, फिर उसे लिटाया जाता है। फिर उसके ऊपर 6 गज कपड़ा ऊपर से नीचे तक डाला जाता है। फिर नौड़न या भाई आदि भेखल की डाली को बार–बार उस नौड़ के ऊपर नीचे घुमाता है। तब उस को खड़ा करते हैं।

फिर बैंची के वीरनाथ का गूर तथा कालीनाग का गूर जल का सेचन करके उसको होश में लाते हैं। तदोपरान्त सब देवते नागणी सौह के ऊपरी भाग तक चल कर वापिस आते हैं और काहिका से नीचे चलकर आगे बढ़ते हैं। एक पशु बलि देकर दियार की टहणियां उखाड़ कर काहिका को गिराया जाता है। फिर सब देवते अपने–अपने मंदिर को जाते हैं। कालीनाग का रथ भी गांव में चलकर दो चक्कर अर्थात फेरे लगा कर जोगणी के मंदिर के पास आता है। शाम को पुजारी आरती करके देवते के छत्र आदि अलंकरण पटारी में बन्द कर देते हैं। फिर पुजारी देवते का एक बोग्गा निकालकर कारदार के सिर पर बांध कर देवता को मंदिर में रखते हैं। परोल के पास फिर पशु बलि दी जाती है। मंदिर के समीप पहुंच कर जहां चक्का (चौकोर सलेटनुमा पत्थर) लगा है वहां पर खड़े होकर फिर बलि देकर मंदिर के अन्दर प्रवेश करते हैं। रथ आदि को यथा स्थान रखकर देवकार्य सम्पन्न होता है।

फिर दूसरे दिन रथ को निकाला जाता है। तथा योगणियों की पूजा की जाती है। तथा देवखेल (देऊखेल) होती है। नागणी सौह में नाटी और खेलों का आयोजन होता है।

तीसरे दिन नौड़ और नौड़न को बाजे के साथ सौह से मंदिर के पास लाते हैं, सब सत्तु से एक दूसरे पर गुलाल की भांति होली खेलते हैं। नौड़ के लिए पांच भार सत्तू भरते हैं। फिर नौड़ अपनी कार्यवाही से छिद्रान्वेषन करते हैं। उसके बाद नौड़न सामने नाचती है और अपने गान का प्रदर्शन करती है। इस प्रकार काहिका मेला सम्पन्न होता है।

तीन बजे के बाद 'सौह' में बच्चों की खेलें, कबड्डी, खो–खो इत्यादि खेल होती है। तथा इनाम बांटे जाते हैं। शिरढ़ काहिके की एक कहावत प्रसिद्ध है :–

''शिरढ़ लागा काहिका,
दिल्ली लागा थरका।''

विपाशा परिसर,गांव /डाकघर बबेली, कुल्लू।

लाहुली साहित्य – एक दृष्टिकोण

– सुरेन्द्र 'सूरी'
गांव घुड़दौड़, डाकघर लराकेलो, कुल्लू।

लाहुली साहित्य पर पिछले दिनों शामीनाला में आयोजित संगोष्ठी में अपेक्षाकृत कम उपस्थिति के बावजूद गंभीर परिचर्चा हुई व आत्ममंथन के लिए कई तथ्य सामने आए। इनसे प्रेरित होकर व दो चार कविताएं लिख पाने के अधिकारवश मैं इस विषय पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने का मोह त्याग नहीं पाया। किसी भी पूर्वग्रह या अतिश्योक्ति के लिए क्षमा चाहूंगा।

लाहुल स्पीति छात्र संगठन द्वारा आयोजित इस संगोष्ठी में वरिष्ठ लेखकों व विचारकों तथा युवा रचनाकारों का सम्मलित होकर लाहुली साहित्य पर चिन्तन करना प्रेरणास्पद रहा। ऐसे संवाद आने वाले समय में हमारे साहित्य को समृद्ध ही बनाएंगे।

संगोष्ठी में अजय का 'लाहुली साहित्य' के बजाए संकोचवश 'लाहुली लेखन' शब्द के प्रयोग का सुझाव देना संभवतः हमारे रचनाकर्म में कलात्मकता, व्यक्तिगत अनुभूति व परिपक्व शैलियों के अभाव की टीस को दर्शाता है। इसका प्रमाण है लाहुली परिवेश व जनमानस पर स्तरीय कहानियों का लगभग न होना तथा कविताओं में अपेक्षाकृत कमज़ोर अभिव्यक्तिपक्ष। जो रचनाएं आ रही हैं उनमें कलात्मक अभिव्यक्ति व शैली को गढ़ने की चेष्ठा की अपेक्षा विषयवस्तु को कहने की उत्कंठा अधिक है। यहां पर मुझे स्कूल के दिनों में पढ़ी कहानी 'ईदगाह' याद आती है जिसमें एक बालक का अपनी दादी के प्रति स्नेह का मन को छू लेने वाला कोमल चित्रण आज भी अनुभव होता है। या फिर अंग्रेज़ी कविता 'द डेफाडिल्ज़' जिसमें एक साधारण विषयवस्तु को कवि ने अपनी कलात्मक दृष्टि, लयपूर्ण वाक्य रचना, समरूपों के प्रयोग व बालसुलभ शैली से एक अमर रचना बना दिया।

साहित्य कला की कसौटी पर लाहुली लेखन अभी विकास की प्रक्रिया में ही है। खासकर कविता, कहानी, आत्मकथा व संस्मरण जैसी विधाओं में जो कि साहित्य के केन्द्र में है। आज का लाहुली साहित्य सांस्कृतिक इतिहास, परंपराओं व रीति रिवाज़ों तथा भाषा संबंधी अन्वेषण, विवरण व मंथन पर केंद्रित है जो कि निसंदेह पाठकों को इन विषयों पर अत्यंत मूल्यावान जानकारी दे रहा है। व इसकी सांस्कृतिक विरासत के विस्मृत हो रहे तत्वों के आधार पर दे रहा है। इसके लिए हमारे समाज को इससे जुड़े सभी लोगों का आभारी होना चाहिए। किन्तु इसके साथ–साथ रचनात्मक लेखन को और बढ़ावा देकर साहित्य की मुख्यधारा से जुड़ने की आवश्यकता से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। ऐसा साहित्य जिसमें सृजनात्मक कौशल द्वारा व्यक्तिगत अनुभूति के तलों को छुआ गया हो। जो शब्दों के कलात्मक संयोजन द्वारा लौकिक से आलौकिक व स्थूल से सूक्ष्म को प्रतिबिंबित करे। जो देश काल से जुड़े प्रश्नों का मंथन भी करे व साथ–साथ इससे परे जाकर सार्वभौमिक सत्य का अनुभव करे।

साहित्य व कला किसी क्षेत्र विशेष की अभिव्यक्ति तक ही सीमित नहीं रह सकती। किन्तु क्षेत्रीय पृष्ठभूमि के लेखन को साहित्यिक स्तर पर ले जाया जा सकता है। लाहुली साहित्य वास्तव में वह होगा जो हमारे परिवेश, समाज, चेतना व जीवन मूल्यों से जुड़ी पृष्ठभूमि पर लिखा जाए व कलात्मक रूप से समृद्ध हो। और यदि यह लाहुली भाषाओं में हो तो और भी बेहतर होगा क्योंकि किसी भी परिवेश की आत्मा को वहां की भाषा ही छू सकती है। एक सीमित क्षेत्र में प्रचलित लाहुली बोलियों में साहित्यिक रूप में ढलने की संभावना कितनी है यह लेखकों की रचनात्मक क्षमता, भाषा व शैली संबंधी प्रयोगों तथा पाठकों की स्वीकृति पर निर्भर करता है हालांकि इनका हिन्दी के साथ मिश्रण प्रभावकारी है। हमारी राष्ट्रीय भाषा हिन्दी में किसी भी परिवेश में ढल जाने की अद्भुत क्षमता है। अतः लाहुली बोलियों में प्रयोगों के साथ–साथ इसको अपनी आवश्यकता के अनुरूप शैली में ढाल कर अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया जा सकता है।

आशा करनी चाहिए कि भविष्य में ऐसे आयोजन होते रहेंगे जो कि लाहुली साहित्य के विकास में उत्प्रेरक का कार्य करें। साहित्य साधना में रत लेखकों, पत्रिकाओं के प्रकाशन व वितरण के श्रमसाध्य कार्य से जुड़े सभी स्वयंसेवकों व पाठक वर्ग को साधुवाद सहित।

स्पीति

– राज कुमार तम्फैल

स्पीति हिमाचल प्रदेश का सबसे अधिक ऊंचाई पर स्थित क्षेत्र है। इसकी समुद्र तल से ऊंचाई 14 हज़ार फीट से भी अधिक है। स्पीति को पिति भी कहते हैं और प्रायः शीत मरुस्थल भी कहा जाता है।

इसका क्षेत्रफल सुमदो से कुंज़ोम तक 7589 वर्ग किलोमीटर है। इसकी जनसंख्या लगभग 10000 है जिसके हिसाब से एक व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर आता है और यह संसार का सबसे कम जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्रों में से एक है। यह हिमाचल प्रदेश के उत्तर पूर्व में स्थित एक ज़िला है। इसके पूर्व की तरफ तिब्बत, उत्तर की तरफ लद्दाख, पश्चिम और दक्षिण की तरफ लाहुल और कुल्लू, दक्षिण पूर्व की तरफ ज़िला किन्नौर की सीमाएं इससे जुड़ती हैं। लाहुल और स्पीति को कुंज़ोम दर्रा अलग करता है जिसकी ऊंचाई 4591 मीटर है। सर्दियों में लाहुल–स्पीति बर्फ पड़ने के कारण छः महीने तक एक–दूसरे से कट जाता है। ज़िला में लाहुल के लिए हैडक्वार्टर केलंग तथा स्पीति के लिए काज़ा है।

प्राचीन समय में स्पीति की भौगोलिक स्थिति बहुत ही दुर्गम थी। आज़ादी के बाद भी कई सालों तक स्पीति में सड़कों का निर्माण नहीं हुआ था। लोगों का जीवन बहुत ही कठिन और संघर्षपूर्ण था। एक स्थान से दूसरे स्थान जाने के लिए याक, घोड़े, गधे, बैलों और खच्चरों आदि का प्रयोग किया जाता था। लेकिन अब यातायात के साधन उपलब्ध होने से इनका कम ही लोग प्रयोग करते हैं। स्पीति मुख्यतः सात घाटियों में बंटा हुआ है जो इस प्रकार हैं –

तोद्पा	शोद्पा	तङपा	शिलानालाग्युद्	बरपा	शमपा	पिनपा
लोसर	पङमो	चिच्चम	काज़ा	लारा	पोह	इस घाटी में लगभग पचास छोटे–छोटे गांव हैं। इसे पिन ञिपचु भी कहते हैं।
चिचोङ	हल	किब्बर	क्वाङ	लिदङ	नदङ	
क्योमो	मोरङ	गेते	तिङग्युद्	नाशुङ	ताबो	
क्याटो	सुमलिङ	टशिगङ	क्युलिङ	लालुङ	लरी	
हंसा	खुरिक	कीह		लिङती	हुरलिङ	
	रङरीक	लङ–चा		ङङ्खर	ग्यु	
		यिक्किम		शिचलिङ	कोरिक	
				मानेगोग्मा	सुमदो	
				मानेयोग्मा		

यहां के लोग अपने घरों को मिट्टी की ईंटों व मिट्टी की दीवारों (ग्यङ) से बनाते हैं। इसके पीछे तर्क यह है कि मिट्टी की दीवारों में ठंड ज़्यादा नहीं लगती। सामान्यतः घर दो मंज़िले होते हैं और कहीं–कहीं तीन मंज़िले भी देखने को मिलते हैं। पशुशाला मकान के सबसे नीचे वाली मंज़िल में होती है। उसी मकान में अनाज भंडारण के लिए भी दो या तीन छोटे–छोटे अंतरभूमिगत कमरे बनाए जाते हैं। जहां अनाज चूहों आदि से सुरक्षित रह सके। हर घर में एक छोखङ (पूजाघर) होता है जहां सुबह–शाम छोनमे (दिये) जलाए जाते हैं और पूजा की जाती है। प्राचीन समय में लोग सिर्फ मिट्टी के मकान बनाते थे लेकिन अब गांवों में भी आधुनिकता दिखने लगी है। गांवों के लोग मिट्टी के मकानों की अपेक्षा पक्के मकानों को तरजीह दे रहे हैं। जो कि यहां की भौगोलिक स्थिति से मेल नहीं खाता और भविष्य में इसके बुरे परिणाम हो सकते हैं। साल में छः महीने स्पीति बर्फ से ढकी रहती थी और छः महीने ही घरेलू काम होते थे। इन्हीं छह महीनों के दौरान ही आगामी सर्दियों के लिए राशन आदि का प्रबन्ध किया जाता था। गांव में परिवार मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं – एक खङछेन–पा (बड़ा घर), दूसरा खिङचुङा (छोटा घर)। खङछेन–पा के पास पूर्वजों की ज़मीन रहती है। घर के सबसे बड़े लड़के को यह ज़िम्मेदारी दी जाती है। स्पीति का अपना एक कानून है जिसमें पिता की ज़मीन का वारिस उसका सबसे बड़ा पुत्र ही होता है। उसके छोटे पुत्रों को पिता की ज़मीन का हकदार नहीं माना जाता है न ही इसके लिए वह कानूनी लड़ाई लड़ सकते हैं। इस तरह का कानून स्कॉटलैंड देश को छोड़कर और कहीं भी नहीं है। पिता के वारिस को खङछेन–पा कहा जाता है। जब पुत्र घर–गृहस्थी संभालने लायक हो जाता है तो घर वाले उसकी शादी कर देते हैं। घर की सारी ज़िम्मेदारी बड़े पुत्र को देकर वे सन्यास ले लेते हैं और खिङचुङ में चले जाते हैं। लेकिन घर

के सभी प्रकार के कामों में सहायता करते हैं। अब सम्पूर्ण परिवार छेम्–गो (ज्येष्ठ पुत्र) की ज़िम्मेदारी पर आ जाता है। अगर घर के छोटे पुत्र अपने माता–पिता के साथ रहना चाहें तो रह सकते हैं।

मार्च–अप्रैल माह में लोग खेतों को जोतना शुरू करते हैं जो कि विशेष प्रकार के पशु ज़ो (याक और गाय की संकर किस्म) द्वारा किया जाता है। कई लोग खेतों को याक से भी जोतते हैं। साधारण तौर पर आम लोग एक सुरा गाय (ज़ोमो) अपने पास रखते हैं जिससे दूध, दही, घी की उपलब्धता घर पर ही बनी रहती है। गांव के खङछेन पा के घर में मुख्यतः दो घोड़े, दो–चार गधे, दो ज़ो, दो–तीन ज़ोमो, एक–दो याक, दो–चार गाय, बीस–चालीस भेड़–बकरियां रहते हैं जो कि खेतों की खाद के लिए भी सहायक होते हैं। फसलों में मुख्यतः गेहूं, जौ, नंगा जौ होते हैं। लगभग पिछले दस–बारह सालों से लोग हरे मटर की भी खेती करने लगे हैं जो कि यहां के लोगों की आय का प्रमुख साधन बन कर उभरा है। इसके अतिरिक्त श्रून–मा (काली मटर), आलू, राजमाह दाल और अन्य फसलें भी यहां के लोग अपनी आजीविका के लिए उगाते हैं। पर्यावरण में परिवर्तन के कारण स्पीति में सेब भी अच्छी किस्म के आने लगे हैं और यह यहां के लोगों की आजीविका का दूसरा मुख्य स्रोत बनकर उभरा है। यहां के सेबों की गुणवत्ता दुनियां के श्रेष्ठ सेबों में शुमार की जाती है। ताबो में हॉर्टीकल्चर विभाग द्वारा अनुसन्धान केन्द्र स्थापित किया गया है जहां पर सेबों से संबंधित (अन्य नस्ल, प्रूनिंग, प्लांटेशन और दवाइयों का प्रयोग, रखरखाव) जानकारियां दी जाती हैं। भविष्य में यह स्पीति की मुख्य आजीविका के रूप में उभर रही है। कृषि विभाग द्वारा स्पिति के लोगों को ग्रीन हाऊस के बारे में जानकारी दिए जाने के पश्चात् अब यहां के लोग ग्रीन हाऊसों का भी प्रयोग करने लगे हैं। परन्तु भविष्य में यह यहां के पर्यावरण को इतना दूषित कर देगा कि बाद में उसको सुधार पाना कठिन ही नहीं अपितु नामुमकिन होगा। स्पीति में लोग वर्षा के पानी पर निर्भर नहीं रहते क्योंकि यहां वर्षा न के बराबर होती है। यहां के लोग नाले या नदी के पानी से सिंचाई करते हैं।

स्पीति के लोग बहुत धार्मिक हैं। यहां पर बौद्ध धर्म का बहुत ज़्यादा प्रभाव है और सम्पूर्ण स्पीतिवासी बौद्ध अनुयायी हैं, पर इतिहास की दृष्टि से देखा जाए तो वहां बौद्ध धर्म से पहले बोन धर्म था जिसके संस्थापक शास्ता शेनरब थे। बोन धर्म के अवशेष अब भी यहां पर देखने को मिलते हैं लेकिन आज सम्पूर्ण स्पीतिवासी बौद्ध अनुयायी हैं। यहां बौद्ध धर्म के पांच बड़े गोम्पा हैं जो कि ताबो (शम घाटी), गुंगरीक (पिन घाटी), कीह (तङ–पा घाटी), तिङग्युद् (शिलानाला घाटी), डङखर (बर घाटी) में हैं। ताबो गोम्पा को हिमालयन अजंता के नाम से भी जाना जाता है। इसकी स्थापना लो–च़ा–वा रिन्चेन ज़ङपो ने 996 ई. में की थी। स्पीति में एक रिवाज़ है कि हर परिवार के मंझले लड़के को लामा (भिक्षु) बनाया जाता है। उनका तर्क होता है कि लामा का जीवन सांसारिक दुःखों से दूर होता है, लेकिन दूरदृष्टि से देंखा जाए तो यह जनसंख्या वृद्धि को रोकने का भी एक उपाय है। ये भिक्षु बचपन से ही गोम्पा में लामा बनकर रहते हैं और चीवर (ज़न–शन्दा) धारण कर लेते हैं। इनको आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता है। आस्था के साथ–साथ कई चमत्कार भी स्पीति में देखने को मिलते हैं। इसका ताज़ा उदाहरण सुमदो से 11 किलोमीटर की दूरी पर स्थित ग्यु गांव है। यहां पर आईटीबीपी द्वारा खुदाई करने पर एक नर–कंकाल की प्राप्ति हुई है। जनश्रुतियों के अनुसार ये कंकाल लगभग पांच सौ वर्ष पुराना है। साधारण जन इन्हें सङातन्ज़िन के नाम से जानते हैं। यह कंकाल आज भी किसी सात्विक पुरुष की समाधि की ओर संकेत करता है। इस कंकाल को देखने पर आज भी इसके जीवित स्वरूप दर्शन होते हैं। बौद्ध गुरुओं की मानता है कि ये निरोद समाप्ति समाधि है।

स्पीति में बड़े लड़के और लड़कियों की शादी बड़ी धूमधाम से कराई जाती है। इस शादी को बकलेन कहते हैं जिसमें पूरे स्पीति और रिश्तेदारों को आमंत्रित किया जाता है। यह शादी स्थानीय रीति–रिवाज़ से की जाती है, जो कि काफी खर्चीली होती है। इस शादी में ञेरङोन (बारातियों का मुखिया) और ञापा (बाराती) मुख्य भूमिका निभाते हैं। शादी के दौरान सारे संवाद, रस्म गाने के ज़रिए ही होते हैं। यह एक अनूठी तरह की संस्कृति देखने को मिलती है। स्पिति में सबसे बड़ी पुत्री (छेमगो) को मां के सारे ज़ेबरात दिए जाते हैं जिसमें कोन्दा, बैरक, गिंऊ, धिकरा, पिचुप, धूं, सिरधुप, दोचा, उल्दिक, मुतिक, बुमज़ां आदि हैं। ये सिर्फ खङछेन–पा के पास ही होते हैं। साधारणतः 'खिङचूङा, के पास उल्दिक ही होते हैं। शादी के बाद घर में जब (ज्येष्ठ पुत्र, पुत्री, मंझला लड़का लामा) बच्चे होते

हैं तो इनका जन्म दिन (पिंगरी) बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। सम्पूर्ण स्पीति से मेहमान बुलाते हैं और पूरी रात नाच–गाना किया जाता है। मांस–मदिरा (छङ–अरक) का जमकर सेवन किया जाता है। छङ को स्पीति का बीयर भी कहा जाता है और यह गेहूं, जौ से बनती है। अरक को बनाने के लिए चूली, सेब, जौ, गेहूं, गुड़ प्रयोग किया जाता है। लोग विशेषकर पुरुष इसे बड़े चाव से पीते हैं।

जाति प्रथा स्पीति में भी होती है जिसमें तीन प्रकार की जातियां होती हैं जो इस प्रकार हैं – छ़ेछङ, ज़ो बेता। छ़ेछङ(राजपूत) खङछेन–पा और खिङचुङा होते हैं। ये उच्च कुल के होते हैं। इनके पास ज़मीन–जायदाद अन्यों की अपेक्षा ज़्यादा होती है। ज़ो (लुहार) का काम लोहे से संबंधित होता है और बेता का काम लोगों के लिए गीत–संगीत द्वारा मनोरंजन करना है।

स्पीति का मुख्य त्यौहार ला–दरचा़ मेला है। यह स्पीति का सबसे महत्वपूर्ण राज्य स्तरीय मेला है जो स्पीति, लद्दाख, लाहुल और बुशहर के बीच व्यापार के संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं। इसी मेले में लद्दाखी व्यापरी, स्पीति व्यापारी, बुशहरी व्यापारी और लाहुली व्यापारी आपस में मिलते हैं और अपने सामानों का आदान–प्रदान कर व्यापार करते हैं। यह मेला जुलाई–अगस्त महीने में मनाया जाता है। पहले यह मेला चिच्चिम गांव के ला–दरचा़ मैदान में मनाया जाता था। परन्तु अब यह काज़ा में ही मनाया जाता है। ला–दरचा़ के अलावा स्पीति में कई अन्य स्थानीय त्यौहार भी मनाए जाते हैं जिनमें ताबो का चाकर (तीन दिवसीय मेला), पिन का छम, क्यी और तिङग्युद् गोम्पा के ग्युतोर विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इन त्यौहारों में लामा गोम्पा में बड़ी पूजा करते हैं और सम्पूर्ण जनजीवन की सुख समृद्धि के लिए पूजा की जाती है। इसी मेले में लामा छम नृत्य और बक नृत्य करते हैं। जिसमें मनोरंजन के साथ लोगों की आस्था जुड़ी होती है। स्पीति में अपने–अपने गांवों में भी अलग–अलग किस्म के पर्व मनाए जाते हैं। जिनमें कई त्यौहार एक जैसे होते हैं जो कि इस प्रकार हैं– नमकन सितंबर माह में मनाया जाने वाला स्थानीय पर्व है। सम्पूर्ण स्पीति में यह मनाया जाता है पर उंनकी तिथि अलग–अलग और अपनी सुविधानुसार होती है। यह पर्व तब मनया जाता है जब फसलों की कटाई हो चुकी होती है। इस दिन घोड़ों की रेस भी लगती है और गांव–गांव के युलसा देवता और मंदिर में पूजा की जाती है। इसी के बाद फसलों की मंड़ाई कर अनाज और भूसे को अलग किया जाता है। दाचंग सर्दियों में मनाया जाने वाला पर्व है। यह तीन से छह दिनों तक चलता है। इसमें लोग छङ–अरग पीते हैं और नृत्य करते हैं। इस दिन देवता पूजा के बाद कोई भी सोलह साल का लड़का आकाश में धनुष द्वारा बाण चलाता है। इसमें लोगें का यह विश्वास है कि सारी बीमारियां बाण के ज़रिए आकाश में चली जाती हैं। पुराने गाने और नृत्य होता है। और विशेषकर यह पुरुषों का त्यौहार है। लोसर पर्व स्पीति का नया साल होता है यह अक्तूबर और नवंबर महीने में आता है। यह ग्युतोर के एक दिन बाद आता है और लोसर लोग धूमधाम से मनाते हैं। यह तिब्बत और लद्दाख के लोसर से पहले आता है। गेलदन अमचो़क भी एक स्थानीय त्यौहार है। इस दिन लोग सम्पूर्ण मकान के हर कमरे में दीये जलाते हैं। इसके पीछे भी लोगों की विशेष आस्था है।

स्पिति पर्यटन स्थल के रूप में उभरा है। यहां के गोम्पा, संस्कृति, कला, वातावरण देश में ही नहीं विदेशों को भी अपनी ओर आकर्षित करती है। यहां के गोम्पा, खासकर ताबो और कीह गोम्पा देश में ही नहीं विदेशों में भी प्रसिद्ध हैं और इनके ऊपर अनेक अनुसंधान कार्य चल रहे हैं। पिन घाटी अपनी प्राकृतिक छटा के कारण विश्व प्रसिद्ध है और यहां पर पिन नेशनल पार्क स्थापित है। जिसमें नाबो, जंगली बकरी, बर्फीले चीते, भालू आदि संरक्षित हैं। इनसे कई जगह के लिए ट्रेकिंग रूट हैं। हज़ारों देशी और विदेशी ट्रेकर हर साल आते हैं और स्थानीय लोगों की सहायता से ट्रेकिंग पर जाते हैं और यह यहां के लोगों की अजीविका का भी साधन बन रहा है। यहां के मुख्य ट्रेकिंग रूट पिन–भावा पास, जिसमें पिन के मुद गांव से ट्रेकिंग शुरू होकर किन्नौर की भावा घाटी तक पहुचती है। दूसरा प्रसिद्ध ट्रेकिंग रूट पिन–पार्वती पास है जो पिन के मुद गांव से होकर कुल्लू के मणिकर्ण तक पहुंचती है। प्रदेश की ऊंची चोटियां मनेरङ, कुंज़ोम और ग्यपिक स्पीति में स्थित हैं। यहां का हिक्किम गांव एशिया का सबसे ऊंचाई में स्थित गांव है जो कि सड़क मार्ग द्वारा जुड़ा हुआ है।

इसे कुदरत की देन समझें या कुदरत द्वारा दिया गया आशीर्वाद, यहां के लोग इलाज़ के लिए स्थानीय चिकित्सा पद्धति व वैद्य का ही प्रयोग करते हैं जिसे स्थानीय लोग इमची (वैद्य) कहते

हैं। जो कि काफी हद तक तिब्बती आयुर्वद से मेल खाता है। प्राचीन समय में इस इलाके में शहरी चिकित्सा प्रणाली का लागू करना असम्भव था, तब यही इमची लोगों के घर–घर जाकर इलाज करते थे और उन्हें दवाइयां मुफ्त में बांटते थे। ये दवाइयां यही के जंगलों से ढूंढकर बनाई जाती थीं। लोग अपनी श्रद्धानुसार उन्हें पैसे के बदले अनाज आदि देते थे।

स्पीति निवासियों की अपनी अलग ही वेशभूषा है जिसमें लोक–पा, चिरदुल, रागोए, छुवा, सुलमा, लिङज़े, चादर, योमा आदि हैं। इनमें लड़कों की पोशाक बुरकू, छिरिङ यङा, रागोए, गोएशेन, गेंचा, किरा, सुतोन, लम हैं। लोक–पा सर्दियों में पहनी जाने वाली पोशाक है। चरलक और गोएशेन, गेंचा विशेष पर्व के दिन ही पहनते हैं। रागोए रोज़मर्रा की पोशाक है। पुरुषों के लिए भी गहने होते हैं जो कि इस प्रकार हैं– कान में गगलों, हाथ के लिए धुं, कमर के लिए गियुं और गले के लिए उल्दिक जो कि औरतों की अपेक्षा छोटा होता है। औरतों की पोशाक पुरुष की पोशाक से भिन्न होती है। औरतों के लिए छुवा, गोए, सुलमा, निंपुसुतेन, चादर, लिङज़े आदि हैं। जब भी गांव में मेले लगते हैं पुरुष और महिलाएं अपनी भागीदारी देते हैं। जिसमें पुरुष टसोल और औरतें शबरो और टशी नृत्य करते हैं। टशी और टसोल शगुन के लिए किए जाते हैं।

अब गांव में स्कूल आदि खुलने, सड़कों की सही सुविधा होने के कारण स्पीति के नागरिक काफी जागरूक हो गए हैं। तथा शिक्षा के क्षेत्र में भी आगे आने लगे हैं। अब हर गांव में स्कूल खुल गए हैं। हर बच्चा स्कूल जाने लगा है। यहां तक कि यहां कई निजी स्कूल भी खुल गए हैं जिससे शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा बढ़ी है। गांव के लोग बच्चों की उच्च पढ़ाई के लिए उन्हें शहरों में भेजने लगे हैं जहां से उन्हें अच्छी शिक्षा प्राप्त हो सके। परिणामस्वरूप अब स्पीति के 70 प्रतिशत बच्चे अन्य शहरों में पढ़ाई कर रहे हैं।

आधुनिक शिक्षा और अच्छा विकास होने के बावजूद गांव वाले धर्म से जुड़े हुए हैं और आस्था को बहुत महत्त्व देते हैं। यही कारण है कि सर्दियों में सम्पूर्ण स्पीति वासी तीर्थ यात्रा को निकल पड़ते हैं जिसमें नेपाल, देहरादून, कर्नाटक, बोधगया, रिवालसर प्रमुख हैं और सारी सर्दी वहीं रहकर पूजा–अर्चना करते हैं। दूसरी तरफ सर्दियों में स्पीति की पिन घाटी में एक विशेष प्रकार का धार्मिक मंचन होता है। जिसे बुछेन कहते हैं। इसकी एक मंड़ली होती है जिसका मुखिया मेमे बुचेन और चार–पांच उनके सहयोगी और एक ओनपा होता है। बुछेन के बाद इन्हीं ओनपा का स्थान आता है। इनका काम लोगों को हंसाना और मनोरंजन करना है। ये मंडली सर्दी भर एक गांव से दूसरे गांव घूमते हैं और लोगों का मनोरंजन करते हैं। लोग बदले में उन्हें अनाज और पैसे देते हैं। बुछेन का दो–तीन नाटक विशेष प्रसिद्ध है जिसमें ग्यलमो कोंजो और दोपचक है। दोपचक नाटक के दिन विशेष पूजा–पाठ किया जाता है। परंपरानुसार इस पूजा–पाठ के बीच में मेमे बुछेन दो रलडी परंपरागत तलवार लेकर चारों दिशाओं में उनको ज़मीन पर गाड़कर उन पर पूरे शरीर को रखकर संतुलित होते हैं। इस परंपरा को निभाते हुए स्थानीय लोग उन्हें रोकते हैं परन्तु मेमे बुछेन उन्हें रोकने के बावजूद परंपरा का निर्वाहन करते हैं। इसी पूजा–पाठ के दौरान खुले में बिछौने के ऊपर जौ के दाने बिछाए जाते हैं। उसके बाद उस पर किसी भी व्यक्ति को लेटा दिया जाता है। अब इस लेटे हुए व्यक्ति के पेट पर एक लंबे पत्थर को रख दिया जाता है इसके पश्चात् उस पत्थर को मेमे बुछेन द्वारा एक लंबी पूजा–अर्चना के बाद तोड़ दिया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि पत्थर के टूटने के पश्चात् इलाके की समस्त बीमारियां नष्ट हो जाती हैं। स्थानीय लोग वहां पर बिछाए जौ के दाने को छिपाकर अपने–अपने घर ले जाते हैं। ऐस करना शुभ माना जाता है।

इन सभी चीज़ों को देखकर यह स्वतः ही एहसास हो जाता है कि स्पीति की संस्कृति अपने आप में कितनी सुमृद्धता लिए हुए है। ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार समय की परिवर्तनशीलता के कारण प्राचीन सभ्यता धीरे–धीरे आधुनिकता की चकाचौंध में खो सी जाती है। इस बात को मद्देनज़र रखते हुए हम सभी को वर्तमान दौर में अपनी सांस्कृतिक विरासत को उसके प्राचीन स्वरूप के अनुरूप संरक्षित रखना होगा। और यह प्रयास आने वाली पीढ़ियों के लिए सांस्कृतिक मार्ग दर्शन करता रहेगा।

निवासी गांव व डाकघर ताबो,
तह. स्पीति, ज़िला लाहुल स्पिति

मिला रेपा की जीवनी

(पाप आवरण निःशेष शुद्धि लीला–2)

– अजेय एवं ठिनले नमज्ञल

गतांक 26 में आप ने पढ़ा : –

भिक्षाटन करता हुआ मिला ल्हडोग् घाटी से बहुत सा जौ एवं एक ताम्रपात्र लेकर गुरु की सेवा में उपस्थित होता है। पर भारी बोझ ज़ोर से छोड़ देने पर उसे बड़ी फटकार पड़ती है। गुरु की आज्ञा से यर डोग् तक् लुङ तथा लिङ क्षेत्रों में 'थू' का प्रयोग कर ओला वृष्टि करता है और ल्हडोग् के लोगों को आपस में लड़वा कर मरवाता है। मरपा उसे 'थूछेन' यानि महान जादूगर की उपाधि देता है। मिला बार–बार धर्म की शिक्षा देने की प्रार्थना करता है। उसे हर बार फटकार और आश्वासन ही मिलता है। मरपा उससे पूर्व, पश्चिम, उत्तर दिशाओं में तीन भवन बनवाते हैं और आधा निर्माण होने पर फिर गिरवा देते हैं। तदन्तर गुरु मिला को सामान्य त्रिशरण गमन, आगम प्रवचन तथा संवर की शिक्षा प्रदान करते हैं। साथ ही असामान्य धर्म की चर्चा करते हुए नरोपाद की संक्षिप्त जीवनी सुनाते हैं और कहते हैं कि यह तुमसे होने वाला नहीं है। मिला गुरु के निर्देशों का पालन करने की पतिज्ञा करता है। एक बार फिर मरपा उसे पूर्व वाले भूखण्ड पर एक नौ मंज़िला भवन बनाने की आज्ञा देता है। इस बार मिला गुरुमाता को साक्षी के तौर पर बुला लाता है ताकि गुरु भवन को फिर से तुड़वाने को न कहें। मिला अपना काम आरंभ कर देता है। एक मंज़िला के करीब चिनाई हो जाने पर मरपा वहां निरीक्षण के लिए पहुंचते हैं और एक पत्थर विशेष पर नज़र पड़ते ही मिला से पूछते हैं–'थूछेन, यह पत्थर कहां से आया?' अब आगे......

भीमकाय पत्थर और पीठ से रिसता मवाद।

मैंने उत्तर दिया गुरुवर, आप के तीन महाशिष्य इस पत्थर को खेल–खेल में यहां तक ले आए थे,

उन के लाए हुए पत्थर का प्रयोग तुम इस भवन के लिए नहीं कर सकते। इसे यहां से निकालो और तुरंत यथास्थान पहुंचाओ।

लेकिन आप ने वादा किया था कि इस बार भवन नहीं तुड़वाएंगे।

बिल्कुल किया था, लेकिन मेरे ये महान शिष्य दो क्रमों के योग'[1] (तंत्र यानस्थ) की साधना कर चुके है। तुम ने इन से नौकरों की तरह काम करवा कर अच्छा नहीं किया। तुम्हें पूरा भवन नहीं तोड़ना है।, बस इस पत्थर को निकाल कर यथा स्थान पहुंचा दो।

उस पत्थर को वहां से हटाने के लिए मुझे वह पूरा भवन ऊपर से नीचे तक गिराना पड़ा फिर मैंने उसे यथा स्थान पहुंचाया।

अब उस पत्थर को लाओ, गुरु ने कहा, और फिर से वहीं स्थापित करो––नींव के कोने में।

यह बहुत कठिन काम था। लेकिन मैंने इसे पूरा किया। मुझे यह काम करने में तीन जनों की शक्ति लगानी पड़ी। मैंने इस पत्थर का नाम ग्यद–दो (भीमकाय पत्थर) रखा और यह इसी मान से प्रसिद्ध हुआ।

जब प्रतिज्ञा पर्वत पर भवन की नींव पड़ रही थी, तो गुरु मारपा के पितृ पक्ष के सम्बन्धी एकत्रित हो कर विचार करने लगे :

प्रतिबन्धित भूमि पर मरपा ने मनमाना निर्माण कार्य चला रखा है। हमें अपनी उस सांझी भूमि की रक्षा के लिए कुछ करना चाहिए।

कुछ ने कहा वास्तव में मरपा पागल हो गया है। उस के यहां लतोद[2] क्षेत्र से जो नन्हा परिव्राजक आया है वह बहुत बलवान है। वह उस से किसी भी पहाड़ी टीले और चोटी पर निर्माण करवाता है लेकिन पूरा होने से पहले ही तुड़वा देता है तथा पत्थर मिट्टी आदि को यथा स्थान पहुंचाने के आदेश देता है। इस भवन को भी वह तुड़वा देगा। नहीं तुड़वाता है तो तब देख लेंगे। देखें, इस बार मरपा क्या करता है?

इस बार भवन नहीं तुड़वाया गया। मैंने उस के सात मंज़िले चिन दिए। पत्थर और गारा ढो ढो कर मेरी कमर में एक ज़ख्म हो गया। गुरु के सम्बन्धियों ने कहा, लगता है इस बार यह भवन को नहीं गिराएगा। मरपा धूर्त है धोखे से हमारी ज़मीन हथियाना चाहता है। हम इस भवन को गिरा देंगे।

इस आशय से उन्होंने भवन को घेर लिया। लेकिन गुरु ने अपनी मंत्र शक्ति से असंख्य कवच धारी सैनिक बना दिए। भवन के भीतर–बाहर घूमते इन जादुई सैनिकों को देख कर वे आश्चर्य चकित थे कि मरपा ने अचानक इतने सारे सैनिक कहां से बुला लिए होंगे? वे भयभीत हो

गए उस के बाद अकेले में चोरी छिपे गुरु के पास आ कर प्रणाम और प्रार्थना करने लगे। अंततः समस्त पितृ पक्ष के सम्बन्धी गुरु के यजमान तथा शिष्य हो गए।

उस समय त्सङ् रोङ क्षेत्र के मेस्तोन त्सोनपो नामक साधक चक्रसंवर[3] का अभिषेक लेने आए। गुरु मां ने मुझ से कहा :

इस बार तुम यह अवसर किसी भी कीमत पर मत खोना।

मैंने मन में सोचा : बिना किसी की सहायता के मैंने इतना बड़ा कार्य सम्पन्न किया, किसी से बकरे के सर के बराबर पत्थर नहीं लिया, टोकरी भर मिट्टी नहीं ली, लोटा भर पानी नहीं लिया, कुदाल भर गारा न लिया, अतः इस बार गुरु जी अवश्य अभिषेक प्रदान करेंगे। यह सोचते हुए मैंने दंडवत प्रणाम किया और अभिषेकार्थियों की पंक्ति में बैठ गया। गुरु ने पूछा : थुछेन, तुम मुझे इस पवित्र अभिषेक की एवज़ में भेंट क्या दे रहे हो?

गुरुवर, आपने अपने पुत्र के लिए पूजा गृह का निर्माण सम्पन्न होने के बाद मुझे धर्मोपदेश देने का वादा कर रखा है। इसी आशा में मैं यहां बैठ गया था।

मेरे हाथ भर के उस छोटे से भवन के बदले मैं तुम्हें वह अमूल्य विद्या कैसे दे दूं, जो भारत जा कर बहुत परिश्रम के बाद मुझे मिला था? कुछ भेंट है तो ले आओ, अन्यथा इस गंभीर मंत्र की अभिषेक पंक्ति में मत बैठो।

यह कह कर उन्होंने मुझे थप्पड़ मारा। बाल पकड़ कर वहां से बाहर निकाल दिया। मैंने सोचा कि इस से अच्छा होता यदि मैं मर ही जाता। मैं रात भर रोता रहा। गुरु मां मेरे पास आ कर सांत्वना देने लगी। गुरु अक्सर यह कहते हैं कि भारत से लाया गया यह धर्म प्राणि मात्र के लिए है। ऐसे में यदि एक कुत्ता भी सामने आ जाए तो धर्म प्रवचन शुरू कर देते हैं और अंत में परिणामना कर इसे सम्पन्न करते हैं। तुम्हारे साथ इस व्यवहार का कारण समझ में नहीं आता। फिर भी तुम गुरु के प्रति मन में मिथ्या विचार कभी मत लाना। इस तरह मुझे खुश कर के वह चली गई।

अगली सुबह गुरु जी ने मेरे पास आ कर कहा :

थुछेन, अब तुम उस भवन का शेष काम रहने ही दो। अब एक लम्बा बरामदा बनाओ, जिस में बारह स्तम्भ लगे हों और एक च़न–खङ (प्रेत गृह) भी बना हो। जब यह निर्माण पूरा हो जाएगा तो मैं अभिषेक और उपदेश दे दूंगा।

मैंने काम आरम्भ कर दिया। गुरु मां मुझे हमेशा भोजन के साथ सब्ज़ी खिलातीं। प्रतिदिन नशा होने लायक छङ का भी प्रबन्ध करतीं। वह मुझे ढाढस बंधाती और प्यार करतीं।

जब बरामदे का काम पूरा होने ही वाला था, उस समय दोल क्षेत्र के छुरतोन बङ्डे वहां गुह्यसमाज[4] का अभिषेक लेने आए। गुरु मां चाहतीं थीं कि इस बार बच्चे को किसी भी सूरत में दीक्षित करवाना है। उन्होंने मुझे एक चमड़े की थैली[5] में मक्खन, ऊनी पट्टी का एक थान और एक छोटा सा ताम्र पात्र दिया जिसे गुरु के समक्ष अर्पित कर मैं अभिषेकार्थियों के मध्य बैठ गया। मुझे देखते ही गुरु जी ने पूछा :

थुछेन तुम अभिषेक पंक्ति में तो बैठ गए। परंतु बताओ, मुझे भेंट स्वरूप देने के लिए तुम क्या लाए हो ?

गुरु देव, वह जो मक्खन, कपड़ा और छोटा सा पात्र है, वही मेरा भेंट है।

इस पर उन्होंने कहा कि ये तो मेरी ही चीज़ें हैं। उन्होंने उन यजमानों के नाम भी बता दिए, जिन से भेंट प्राप्त हुए थे––

मेरी ही संपत्ति तुम मुझे कैसे भेंट सकते हो? यदि तुम्हारे पास अपना कुछ है तो लाओ, अन्यथा इस पंक्ति में मत बैठो।

ऐसा कहते हुए उठ कर खूब फटकार सुनाई और लात मारते हुए बाहर निकाल दिया। उस समय विचार आया कि मैं यहीं पृथ्वी में समा जाता तो कितना अच्छा था?

मैं सोचने लग कि शायद यह मेरे पापों का ही विषाक्त फल है जो मैंने थू द्वारा हत्याएं कर के और ओलावृष्टि से फसलें तबाह कर के कमाया था। क्या गुरु जी को ज्ञात हो गया है कि मैं धर्म का

पात्र नहीं हूं? क्या यह गुरु में करुणा की कमी के कारण है? जो भी हो, धर्म के बिना मानव काया किस काम का, जो केवल पाप एकत्रित करता हो? क्या मुझे आत्म हत्या कर लेनी चाहिए?

इतने में गुरु मां मेरे लिए गण (चक्रपूजा) का भोज्य अंश ले कर आई। उस ने मुझे बहुत सांत्वना दी और चली गई। लेकिन मुझे खाने की इच्छा नहीं थी और सारी रात मैं रोता रहा।

सुबह गुरु जी मेरे पास आकर बोले, वह छोटा सा अधूरा भवन और बरामदा यदि तुम अपने हाथों से पूरा कर दोगे तो मैं तुम्हें अवश्य धर्मोपदेश दूंगा। मैं फिर से काम पर लग गया। बरामदा पूरा होने तक नितम्ब में एक घाव निकल आया था। पीठ के तीनों घाव मिल कर एक हो गए थे और पूरी पीठ से रक्त और मवाद बह रहा था। मैंने यह गुरुमाता को दिखाया। साथ ही गुरु द्वारा किए गए वायदों का भी स्मरण कराया। मैंने प्रार्थना की कि वे गुरु को इस बारे बताएं। गुरु मां ने मेरे घावों को अच्छी तरह से देखा। उन की आंखों से अश्रुधारा फूट पड़ी और मुझ से कहा,, मैं गुरु से निवेदन करूंगी।

पाद टिप्पणी –

1 शमथ एवं विपश्शना

2 पश्चिमी तिब्बत (संदर्भ 'The Life of Milarepa' by Lobsang P. Lhalungpa) P-211 reprint by Book Faith India, Delhi)

3 अनुत्तरतंत्र के अनुसार मातृ तंत्र वर्ग का एक यिदम (इष्ट) जो कि ऐसे समस्त इष्टों की तरह अपने आप में एक सम्पूर्ण साधना पद्धति भी है। प्रज्ञा एवं चेतना के विकास से सम्बद्ध क:ग्यु परम्परा की सब से महत्वपूर्ण साधना पद्धति।

4 पितृ तंत्र वर्ग का यिदम। साधना की इस पद्धति का संबन्ध मन की अपरिमित करुणा के विकास से है।

5 चमड़े की थैली जिस में रखा मक्खन खराब नहीं होता है। लाहुल की स्थानीय बोलियों में इसे कोग कहते थे।

पृष्ठ 26 का शेष

का क्षेत्र सम्भवतः लोहा या लोहे पड़ गया होगा आज भी लाहुल के पश्चिमी पड़ोसी क्षेत्र पांगी और पाडर के निवासी लाहुल को 'लोहे' बोलते हैं और लाहुल के निवासियों को 'लोहे मामा'। अब प्रश्न उठता है कि प्राचीन कुल्लू निवासी लाहुल को क्या कहते थे इस बारे कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है, परन्तु लाहुल निवासियों को कुल्लू निवासी भोट कहते थे। प्राचीन भारतीय साहित्य में भी तिब्बत के निवासियों को भोट और प्रदेश को भोट देश कहा गया है।

इस प्राचीन समझौता को बसगो (लद्दाख का प्राचीन राजधानी) के युद्ध के बाद कुल्लू के साथ व्यापार समझौता में बदल दिया गया था इस युद्ध में तिब्बत ने मंगोल सेनाओं की सहायता से लद्दाख पर हमला किया था। जिस के फलस्वरूप लद्दाख की शक्ति बहुत कम हो गई थी। परन्तु कुल्लू और लद्दाख के मध्य लोहा और गंधक का आदान–प्रदान कुल्लू को सिक्खों द्वारा अधीन (1840 ई.) करने तक जारी रहा।

ज़िला लाहुल स्पीति के जनजातीय समाज

जनजाति से अभिप्राय वह राष्ट्र, जनसमूह और समुदाय है जो स्थानीय आदिवासी हों। उनके इतिहास की कड़ियां उन्हें अतीत से जोड़ती हों, वह अपने आप को उन अन्य समाज और समुदायों के लोगों से भिन्न समझते हों जो लोग इस समय में भी उनके पड़ोसी क्षेत्र या उन्हीं की बस्तियों में रह रहे हों, इस समय वह एक पिछड़े समाजिक अवस्था में रह रहे हों परन्तु अपने पूर्वजों से मिले क्षेत्र विशेष और समाजिक पहचान को आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित और विकसित रूप में हवाले करने की दृढ इच्छा शक्ति रखते हों, ताकि उनकी अपनी सांस्कृतिक ताना–बाना, समाजिक व्यवस्था और न्याय प्रणाली सुरक्षित रह सके। भारत वर्ष में आर्यों, मुगलों और अन्त में अंग्रेज़ों ने हमले किए और अपनी–अपनी कालोनियां स्थापित कर बस गए। परन्तु इन हज़ारों वर्षों की कठिन परिस्थितियों के होते हुए भी जनजातीय लोगों ने अपनी अलग समाजिक पहचान को जीवित रखा हो।

ज़िला लाहुल–स्पीति में भारत वर्ष के दो प्रमुख सांस्कृतिक धाराओं, मंगोल और आर्य जाति के आदिवासी अथवा जनजातीय लोग हैं। मंगोल जाति की नुमाइन्दगी भोट और बौद्ध समाज और आर्य जाति के स्वाङला समाज करता है।

उपाध्यक्ष, रि.ज़.लि. एण्ड क. सभा, केलंग

संस्मरण

शीत मरुस्थल में कुछ दिन

– डॉ. सूरत ठाकुर

रात अपने अंतिम पड़ाव पर थी। अचानक फोन की घण्टी की ट्रिन–ट्रिन आवाज़ ने गहरी मीठी नींद में खलल डाला। चौंगा उठाया तो उधर सें आवाज़ आई तीन बज चुके हैं जाग जाओ। ठीक चार बजे ढालपुर पहुंचना है। घण्टी बजते ही बिस्तर से उठा, तुरन्त स्नानागार में घुस गया। नहाकर तरोताज़ा होने के बाद अपना सामान पिट्ठू में डालना शुरू किया। नाईट सूट गर्म स्वैटर, टार्च, डायरी, कैमरा आदि जब तक पिट्ठू में डाले तब तक श्रीमती ने आलू के परांठे तथा भिंडी की सब्ज़ी बनाकर टिफिन में डाल दी और गर्मा–गर्मा दूध का गिलास पीने को दिया। फटाफट दूध पिया, पिट्ठू उठाया और श्रीमती को बाय–बाय करके ढालपुर की तरफ चल पड़ा ठीक चार बजे मैं ढालपुर में था। वहां पर तोबदन, हीरालाल ठाकुर और उरज्ञन मेरा ही इन्तज़ार कर रहे थे। एक टाटा सूमो पास में ही तैयार खड़ी थी। ड्राईवर जीप के शीशे साफ कर रहा था। मुझे देखते ही हीरालाल ने कहा–''आप तो ट्रैकरों की तरह पिट्ठू लेकर आ गये।

सबको अभिवादन करते हुए मैंने जवाब में कहा, ''मैं वास्तव में एक ट्रैकर ही हूं। यद्यपि हमने जीप में जाना है फिर भी न जाने कब और कहां पैदल चलने की नौबत आ जाए।''

''आपकी बात बिल्कुल ठीक है। पहाड़ों में सड़कों का कोई पता नहीं होता कि कहां टूटी पड़ी मिले।'' तोबदन ने मेरी बात का समर्थन करते हुए कहा।

अब तक ड्राईवर शीशे साफ कर चुका था। पांचों ने सामान जीप की पिछली सीट पर डाला और गाड़ी में बैठ गए हमारे बैठते ही गाड़ी के पहिये सरकने प्रारम्भ हुए और कुछ देर में ही गति पकड़ ली।

जुलाई–अगस्त के महीनों में पहाड़ पर धुन्ध छाई रहती है। आज भी बादलों ने कुल्लू को पूरी तरह से ढक रखा था और हल्की–हल्की बूंदाबांदी भी हो रही थी। हम ठारह करडू का स्मरण करते हुए अपनी शुभ यात्रा की कामना करने लगे। आधे घण्टे में रायसन पहुंचे तो वहां पर हमारे अन्य दो साथी सतीश कुमार लोप्पा तथा खूबराम जी हमारा इन्तज़र कर रहे थे। हमने जीप रुकवाई। उनके पास दो बड़े बैग थे जो उनके बेटे ने उठाए हुए थे। बड़े बैग देखकर हीरालाल ने उनसे पूछा, 'ठाकुर जी! आप ने इन दो बैगों में क्या भर रखा है? क्या स्पीति में ही डेरा डालने का इरादा है?'

ऐसी बात नहीं है। एक बैग में मेरे कुछ कपड़े हैं और दूसरे में आप लोगों के लिए सेब डाल रखे हैं ताकि रास्ते में इनका स्वाद लिया जाए।'

यह तो अच्छी बात है। सच में किसी ने कहा है कि बुजुर्गों का रहने से कई सुविधाएं स्वतः ही मिलती हैं। कुल्लुवी में एक कहावत भी है कि बुजुर्ग ढोल भीतरै रौहिया भी मदद केरा सी।' उनकी बात हो ही रही थी कि इतने में उनके बेटे ने उनका सामान जीप की पिछली सीट में रख लिया।

वर्षा ऋतु के आगमन के साथ ही जुलाई महीने तक अधिकांश पर्यटक अपने–अपने घरों को वापिस लौट चुके होते हैं। अतः राष्ट्रीय उच्चमार्ग में गाड़ियों की भीड़ कम थी। मनाली से आगे लाहुल के लिए काफी गाड़ियां नज़र आईं। ज़्यादातर मटर की ढुलाई के लिए ट्रक और लेह तक सैनिकों के लिए राशन ढोने वाले मिलिट्री के ट्रकों के काफिले दिखाई दिये। लाहुल में कुछ वर्षों से मटर की खेती होने लगी है। लाहुल के मटर की मार्किट में अच्छी कीमत मिल रही है। इसलिए आलू के साथ–साथ लोगों ने मटर की खेती करना भी आरम्भ कर दिया है।

मनाली से आगे पलचान तक व्यास के बाएं किनारे से होकर सड़क है। मार्ग में दायीं तरफ देवदार के हरे–भरे पेड़ और नीचे बहती व्यास की कल–कल करती तरंगें प्रकृति के अनुपम अस्तित्व का आभास करवाती हैं। हालांकि हम सभी साथी कुल्लू व लाहुल स्पीति से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिए हमारे लिए यह दृश्य सामान्य लगता है। परन्तु आज इस सुबह के शान्त दृश्य में व्यास के पानी की मधुर, ध्वनि ऐसी लग रही थी मानो स्वयम् व्यास ऋषि तानपुरा लेकर माधुर्य का विस्तार कर रहे हों। पलचान से आगे अनेके घुमावदार मोड़ों से होकर उत्तुंग रोहतांग की चढ़ाई आरम्भ हो जाती है। हम कोठी व गुलाबा के रंगबिरंगे फूलों से सुसज्जित चरागाहों को देखकर मन्त्रमुग्ध होते रहे। कोठी पहुंचते–पहुंचते बारिश की बूंदे थम गई थी। रोहतांग की पहाड़ियों का हमें दर्शन लाभ देने के लिए बादल हटना शुरू हुए थे। हम रोहतांग के आसपास की हरी–भरी चरागाहों को देखकर पुलकित हो रहे थे।

ठीक नौ बजे हम मढ़ी पहुंचे। कहते हैं यहां पर सिख सेना के सरदार लैहणा सिंह मजीठिया ने सन्1839 ई. में एक छोटा सा मंदिर बनवाया था। समुद्र तल से 10419 फुट ऊंचे इस स्थान का नामकरण छोटे मंदिरों की अस्थायी स्थापना के कारण भी मढ़ी पड़ा होगा। जब सिख सैनिकों ने लाहुल पर आक्रमण करना चाहा था तो वे यहां की ठण्ड को बर्दाश्त न कर सके और यहां पर एक–एक करके मरने लगे। उरज्ञन जी का कहना है कि मढ़ी का नाम मरे हुए लोगों के नाम पर मढ़ी पड़ा होगा।

आजकल यहां पर सभी वाहन थोड़ी देर रुकते हैं। यात्री चाय नाश्ता करते हैं। यहां पर अस्थायी रूप से दस पन्द्रह ढाबे तथा टी स्टाल हैं। ये ढाबे बाले 15 अप्रेल से 15 नवम्बर तक यहां डेरा डालते हैं। जब नवम्बर के बाद बर्फ पड़नी शुरू होती है तो अपना सामान समेटकर अपने–अपने घरों को लौट जाते हैं।

मढ़ी में हमने चाय पी और अपने साथ लाया हुआ नाश्ता किया। आदिकाल से ही यहां इस समतल जगह पर लाहुल आने–जाने वाले विश्राम करते हैं। जब लाहुल के लिए वाहन योग्य सड़क नहीं बनी थी तब लोग मनाली से ही पैदल चलकर पहला पड़ाव मढ़ी में ही करते थे। मनाली से रोहतांग की चढ़ाई चढ़ते हुए बीच मार्ग में होने के कारण भी यह स्थान आराम फरमाने के लिए उपयुक्त है।

चाय नाश्ता करने के बाद जीप ने रोहतांग की ओर सरकना शुरू किया। मढ़ी से रोहतांग की तरफ पैदल चलना हो तो इसकी दूरी केवल तीन किलोमीटर होगी। परन्तु वाहन योग्य सड़क कई मोड़ों से होकर मढ़ी से रोहतांग की दूरी लगभग 20 किलोमीटर है।

रोहतांग पास के दक्षिण की तरफ व्यास घाटी की हरी–भरी वादियों के दर्शन होते हैं तो दूसरी तरफ लाहुल की तरफ ऊंचे–ऊंचे अजेय पर्वतों के सीना ताने दृश्यों का अवलोकन रोमांचित करता है। मूरक्राफ्ट प्रथम ऐसा विदेशी यात्री था जिसने अपने साथी ट्रैवक के साथ 17 अगस्त 1820 को यह शिखर पार किया था। समुद्र तल से 13400 फुट की ऊंचाई पर स्थित रोहतांग शिखर पर मार्ग के बायीं तरफ एक बड़ी चट्टान के नीचे व्यास कुंड है। यहीं पर महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास ने तपस्या की थी। हाल ही में यहां पर हिमाचल के पर्यटन विभाग द्वारा डोम शैली में व्यास ऋषि का एक मंदिर बनवाया गया है। मंदिर के अन्दर पवित्र जल का स्रोत तीर्थ के तौर पर मान्य है। रोहतांग आने वाले सभी पर्यटक इस जल में हाथ मुंह धोना नहीं भूलते। रोहतांग दर्रा हर वर्ष जून के प्रथम सप्ताह में खोल दिया जाता है और 15 नवम्बर के बाद बन्द हो जाता है। रोहतांग को तिब्बती भाषा में मौत का घर भी कहा जाता है। अब तक यहां पर आंधी आने से अनेके यात्री मौत के शिकार हो चुके हैं। के. अंगरूप लाहुली ने सोमसी के जून–अक्तूबर 1997 के अंक में अपने लेख स्पीति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में पृष्ठ 88 पर लिखा है कि ग्याहरवीं शताब्दी में लद्दाख के शासक ग–दन–छे–वङ की एक सैन्य टुकड़ी ने लाहौल में केलंग के गढ़ पर आक्रमण किया था। लाहौल के बाद ये टुकड़ी जब कुल्लू की ओर अग्रसर हो रही थी तो रटांग दर्रे के आंचल में पहुंचकर भारी हिमनद (गलेशियर) के स्खलन से दब कर सभी की वहीं पर मौत हो गई थी। इनके शव महीनों तक बर्फ के नीचे दबे रह गए थे। जून–जुलाई की तीव्र धूप में जब बर्फ गलने लगी तब लोगों ने देखा कि उन भोटिया सैनिकों के शवों से रटांग दर्रे का अन्चल पट सा गया है। उस भयावह दृश्य को देखकर लोगों के मुंह से अनायास ही रो–थङ (शवों का मैदान) शब्द निकल पड़ा था। तभी से लाहौल और कुल्लू के मध्य स्थित यह दर्रा रो–थङ शब्द का ही विकृत रूप रोहतांग के नाम से जाना जाता है। कुल्लू के लोगों की हमेशा से ही लाहुल को देखने की जिज्ञासा रही है। इसीलिए एक लोकगीत में लोकगायक ने कहा है–

चुटा लोड़ी ती रटांग रा ठेलरू लाहुल हेरिना ती सारा।

अर्थात् अगर रटांग का जोत टूट जाता तो हम लाहुल को आसानी से देख सकते।

लाहुल स्पीति का प्रवेश द्वारा रोहतांग सचमुच में इतिहास की कई घटनाओं को संजोये हुए है। रोहतांग में हमने व्यास ऋषि के कुण्ड में हाथ–मुंह धोकर अपने को पवित्र किया। ऋषि को प्रणाम किया और लाहुल घाटी की ओर चल पड़े। रोहतांग से घाटी की तरफ उतराई में कई मोड़ों से होते हुए हम 11.00 बजे के आसपास ग्रम्फू पहुंचे। ग्रम्फू में एक दो चाय के स्टाल हैं। ग्रम्फू से एक सड़क केलंग की ओर जाती है और दूसरी काज़ा की ओर ग्रम्फू से काज़ा की दूरी 137 किलोमीटर है। ग्रम्फू में दो अन्य साथी अजेय व डॉ. रणधीर मनेपा भी हमारे साथ हो लिए।

ग्रम्फू से 17 किलोमीटर की दूरी पर छतड़ू तक सड़क पक्की हो चुकी है। छतड़ू समुद्र तल से 3360 मीटर की ऊंचाई पर स्थित किसी समय एक गांव था। अभी भी यहां गांव के अवशेष देखने को मिलते हैं। कहते हैं एक समय चंद्रा में बाढ़ आने से यह गांव उजड़ गया। आजकल यहां अस्थायी तौर

पर एक दो ढाबे आने–जाने वालों को खाना और चाय उपलब्ध करवाते हैं। सड़क से लगभग 20 मीटर की ऊंचाई पर कुछ आलू और मटर के खेत हैं। हमने भी यहां पर चाय बिस्कुट ब्रेकफास्ट किया। छतडू में पुल पार करके चन्द्रा नदी के दायीं ओर से छोटा दड़ा होते हुए बातल तक 32 किलोमीटर लम्बा रास्ता जाता है। बातल में चन्द्रा नदी पर बने पुल को पार करके 8 किलोमीटर की चढ़ाई जिसमें 19 मोड़ों से चलते हुए कुन्ज़ोम दर्रे पर पहुंचा जाता है। लगभग 2 बजे हम कुन्ज़ोम जोत पर पहुंच गए।

जब स्पीति के लिए वाहन योग्य मार्ग नहीं था, कुल्लू के प्रीणी गांव से हमटा दर्रा होते हुए छोटा दड़ा तक पैदल रास्ता था। छोटा दड़ा के सामने फेटी रोन्ही नामक स्थान पर आने–जाने वाले लोग तथा व्यापारी विश्राम करते थे। फेटी रोन्ही के बाद बातल होते हुए कुन्ज़ोम तक का सफर काफी थका देने वाला होता था स्पीति की बोली में कुंज़ोम का अर्थ होता है मिलने का स्थान। कुन्ज़ोम दर्रे पर कुल्लू से जाने वाले तथा स्पीति से आने वाले यात्रियों का मिलन होता था। पहाड़ों में परम्परा है जब कोई व्यक्ति पहली बार किसी चोटी को पार कर रहा होता है तो उसे चोटी पर एक पत्थर की शिला खड़ी करनी पड़ती है जिसे ओड़ी कहा जाता है। उसे उन साथियों को रुपये के रूप में कुछ नज़राना भी देना पडता है जो उसके मार्गदर्शक के रूप में उसके साथ चल रहे होते हैं। बाद में आगे जाकर वे सब उन रुपयों से जलपान करते है। कुन्ज़ोम दर्रे पर भी यही परम्परा निभाई जाती है। हमारे साथी अजेय व तोबदन पहले भी स्पीति गए थे। इसलिए हमें उन्हें ओड़ी की एवज़ में नज़राना देना पड़ा। एक प्रकार से यह नज़राना मार्गदर्शक का मेहनताना कहलाया जा सकता है।

कुन्ज़ोम दर्रे के दोनों तरफ ढलानदार चरागाह हैं जिनमें गर्मियों में कुल्लू तथा मण्ड़ी– सुकेत के पुहालों की लगभग तीस हज़ार भेड़–बकरियां चरती हैं। इन चरागाहों में भेड़ें चराने की एवज़ में वन विभाग वाले पुहालों से तिरनी आर्थात् टैक्स के रूप में 20 पैसे भेड़, 40 पैसे प्रति बकरी, 2 रुपये प्रति घोड़ा तथा 25 रुपये प्रति डेरे के हिसाब से उगाहते हैं। इस क्षेत्र में उगी हुई पौष्टिक नीरू घास भेड़–बकरियों को शक्ति प्रदान करती है। इस घास की विशेषता है कि यह भेड़ बकरियों द्वारा एक दिन चरने के बाद दूसरे दिन उतनी ही लम्बी हो जाती है।

कुन्ज़ोम जोत की ऊंचाई समुद्र तल से 4551 मीटर है। यहां पर देवी पलदन ल्हामो का मंदिर है। इसे कुन्ज़ोम माता भी कहा जाता है। कुछ लोग इस मंदिर को योगिनी देवी का भी मानते हैं। इस मंदिर की परिक्रमा करने के बाद ही हर आने जाने वाला अपना आगे का सफर शुरू करता है। यात्री चाहे गाड़ी पर हो, चाहे खच्चर पर हो, चाहे पैदल हो कुन्ज़ोम माता के स्थल की परिक्रमा किए बिना वह आगे का सफर तय नहीं करता। हमने मंदिर में माता के चरणों में माथ टेका और मंदिर की परिक्रमा की तथा देवी से आगे की सकुशल यात्रा की कामना करके स्पीति घाटी की ओर चल पड़े।

कुन्ज़ोम से आगे स्पीति घाटी पड़ती है। 2931 वर्गमील में फैली स्पीति घाटी पर्यटकों, यायावरों, ट्रैकरों, व्यापारियों तथा श्रद्धालुओं के लिए किसी अचम्भे से कम नहीं हैं। पश्चिमी वृहत्तर हिमायल तथा मध्य हिमालय में स्थित यह घाटी कुन्ज़ोम से सुमदो तक 70 मील लम्बी तथा दो मील चौड़ी है जिसके दोनों ओर बर्फ से ढकी पर्वत चोटियां कलाकारों को कैनवस पर उतारने तथा कवियों को नये गीत रचने पर विवश करती है। प्रकृति द्वारा अनुपम सौंदर्य से सुसज्जित इस घाटी के लोगों की अलग ही दुनियां है। चारों तरफ झीलों, दर्रों और हिमखण्ड़ों से घिरे आसमान छूते शैल–शिखरों के दामन में बसी स्पीति घाटी अपने जादुई सौंदर्य और प्रकृति की विविधताओं के लिए विख्यात है। इस घाटी में स्थित गोम्पाओं में बौद्ध मंत्रों की गूंज के साथ वाद्ययंत्रों के सुमधुर स्वर एक अलौकिक अनुभूति से भर देते हैं। स्पीति को बर्फ का रेगिस्तान भी कहा जाता है। क्योंकि यहां जुलाई अगस्त में हल्की बारिश की फुहारें पड़ती हैं। उसके बाद केवल बर्फ ही पड़ती है। डॉ. विद्याचंद ठाकुर ने सोमसी जून अक्तूबर 1997 के लाहुल स्पीति विशेषांक में शब्द व्युत्पत्ति के परिप्रेक्ष्य में लाहुल स्पीति एवं केलंग नामक लेख में स्पीति का सम्बन्ध अश्वपति से जोड़ते हुए लिखा है कि अश्वपति शब्द की उच्चारण यात्रा में पहले मध्य के व वर्ण के अ स्वर के लोप होने पर अशुपति शब्द बन गया है। तत्पश्चात् आदि स्वर अ और मध्य स्वर उ के लोप तथा मध्य स्वर अ के इ में एवं तालव्य श के दन्त्य स में परिवर्तन से स्पीति शब्द प्रचलित हुआ। स्पीति को कई विद्वान पानी का देश, ती से इसकी उत्पत्ति मानते हैं तो कई उज्जैन राज्य के अश्वपति राजा के नाम से स्पीति का नाम जोड़ते हैं। स्पीति का पुराना नाम पिति है। लाहुल की बोली में पि का अर्थ होता है चार और ति का अर्थ होता है पानी। हमारे साथी अजेय ने पिति का नाम चार नदियों से जोड़ते हुए कहा कि स्पीति की कृषि में चार नदियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। ये नदियां है पिन, रटांग, रङरीक तथा ल्हलुङ।

स्पीति की सीमाएं पश्चिमी हिमालय की वृहत तथा मध्य हिमालय से लगती हैं जिसमें पश्चिमी सीमा 90 मील लम्बी जो उत्तर में सरचू और लिंगती नदी से होती हुई कुन्ज़ोम जोत से मिलती है। कुन्ज़ोम से हमटा तथा रोहतांग तक मध्य हिमालय तक की लम्बाई लगभग 30 मील है। रोहतांग को पार करने के बाद स्पीति में प्रवेश किया जाता है। इसी तरह आउटर सराज में श्रीकंठ महादेव के पूर्व की तरफ एक दुर्गम रास्ता स्पीति में मिलता है। पश्चिमी तिब्बत का डरि कोर सुम क्षेत्र स्पीति की पूर्व दिशा में स्पीति नदी के बायीं तरफ पड़ता है।

स्पीति में पांच कोठियां हैं तोद्पा, बरशिग, शम, छोज़ी और पिन। शम कोठी के गांव स्पीति नदी के दोनों तरफ पिन के संगम से नीचे दक्षिण पूर्वी कोने का सारा इलाका है। पिन कोठी घाटी आती है। पिन स्पीति संगम से ऊपर स्पीति नदी के दोनों किनारे तथा बायें किनारे की लिङती उपंत्यका बरशिग कोठी में आती है। तोद्पा कोठी बरशिग से उत्तर शिला और सपा की उपत्यकाओं में अवस्थित है। छोज़ी में स्पीति के दक्षिण पश्चिमी कोने के गांव पड़ते हैं। कोठी के मुखिया को गद्पो–छेनमो कहते हैं और गांवों के मुखिया को गद्पो छुंगुन। गद्पो छेनमो ही गांव में मालगुज़ारी इकट्ठा करते हैं। स्पीति की आबादी 1868 में 2272 थी जो 1910 में 3629 हो गई और 2001 में इसकी आबादी 10679 हो गई है। स्पीति लाहुल स्पीति ज़िले का एक उपमण्डल है। वर्तमान में जिसका प्रशासन अतिरिक्त ज़िला दण्डाधिकारी के अधीन है। इसका मुख्यालय काज़ा में है।

स्पीति घाटी के लिए मनाली, रामपुर बुशहर तथा शिमला से टैक्सियां आसानी से उपलब्ध होती हैं। गार्मियों में ही अगस्त मास में काज़ा का जनजातीय उत्सव देखने योग्य होता है। इस मेले में स्पीति के लामाओं द्वारा किया जाने वाला प्रसिद्ध छम नृत्य का विशेष आकर्षण होता है। स्पीति का लगभग प्रत्येक गांव वाहन योग्य मार्ग से जुड़ने को तैयार है। जब स्पीति में प्रथम बार गाड़ी के दर्शन हुए थे और उसमें स्पीति के उपमण्डल अधिकारी आये थे तो लोकगायकों ने एक गीत के माध्यम से अपनी खुशी इस प्रकार व्यक्त की थी–

ठण्डा पाणी हो पोमो ठण्डा पाणी हो, सपिति देशा ठण्डा पाणी हो।
जीपा चली हो पोमो जीपा चली हो, सपिति देशा जीपा चली हो।
साहब आया हो पोमो साहब आया हो, सपिति देशा साहब आया हो।
जुले केरी हो पोमो जुले केरी हो, सपिति देशा जुले केरी हो।

कुन्ज़ोम से 17 किलोमीटर की दूरी पर स्पीति घाटी का पहला गांव लोसर पड़ता है। लोसर 50–60 घरों का गांव है। यहां पर एक सरकारी उच्च विद्यायल है, वन विभाग, पशुपालन विभाग, स्वास्थ्य विभाग तथा लोक निर्माण विभाग के दफतर हैं। जिस तरह खोकसर रोहतांग आने–जाने वालों के लिए पड़ाव है। वैसा ही समुद्र तल से 4079 मीटर ऊंचाई पर बसा लोसर भी कुन्ज़ोम जोत लांघने वालों का पड़ाव है। यहां से गुज़रने वाली गाड़ियों तथा पर्यटकों का रजिस्ट्रेशन किया जाता है। गाड़ियों के ड्राईवर तथा सवारियां यहां पर जलपान भी करते है। लोसर में हिमाचल प्रदेश लोकनिर्माण विभाग का रेस्ट हाऊस एवं कुछ नीजी गेस्ट हाऊसों में ठहरने की उचित व्यवस्था है। घाटी के इस प्रथम गांव से ही बेली तथा पापुलर के पेड़ देखे जा सकते है। इसके अतिरिक्त जंगली बेठर जिसे शुक्पा कहते हैं, के पेड़ भी यहां पर उगे हुए मिलते हैं। छेरमङ के छोटे–छोटे पौधे भी पीले–पीले दानों से फले हुए दिखते हैं। कुन्ज़ोम में हमने ओड़ी के लिए अजेय व तोबदन को जो नज़राना दिया था, लोसर में हमने उससे एक टी स्टाल में जलपान किया।

लोसर के आगे हंसा गांव पड़ता है। हंसा लोसर से अधिक विकसित है। यहां पर सीनियर सैकेंडरी स्कूल है। हंसा गांव का विशेष सांस्कृतिक महत्व है। हंसा में कुल्लू के प्रसिद्ध देवता जमलू तथा लाहुल के देवता राजा घेपङ ने कुछ समय तक विश्राम किया था। उसके बाद ही ये दोनों देवते हमटा होते हुए चन्द्रखणी पर्वत पर पहुंचे थे। जहां से जमलू तो प्राचीनतम गणतन्त्र के लिए प्रसिद्ध गांव मलाण में स्थापित हुआ और घेपङ लाहुल की ओर चला गया जो सिस्सू गांव में पूजित हुआ। हंसा में जमलू देवता का मंदिर है। यहां इसे डला शक्चे के नाम से जाना जाता है। डला शक्चे के मंदिर में घोड़े पर सवार भव्य पूर्ति है जिस ने हाथ में खड्ग धारण किया हुआ है। घोड़े पर सवार और खड्ग धारण करने से इनके योद्धा होने की पुष्टि होती है। हंसा गांव के उत्तर की ओर ऊपर चोटी पर भी डला शक्चे का वास माना जाता है। गांव के लोगों को जब कभी रात्रि में इस चोटी पर मशालें जलती हुई दिखाई देती है तो वे समझ जाते हैं कि डला शक्चे उन्हें ऊपर से देख रहा है। तब वे उसे प्रणाम करना नहीं भूलते।

समूची स्पीति घाटी में बौद्ध धर्मावलम्बी लोग रहते हैं जिसके प्रभाव के कारण ही हंसा के डला शक्चे के मंदिर की ऊपरी मंज़िल में बौद्ध विहार बनाया गया है। हंसा गांव में एक दो निजी पेइंग गेस्ट हाऊस हैं। जिनमें रात्रि विश्राम किया जा सकता है।

हंसा से आगे रास्ते में नदी के किनारे बने हुए रेत के टीले अलग ही दृश्य पेश करते हैं। इस घाटी में मरुस्थल विकास परियोजना के माध्यम से विल्लो के पेड़ों का रोपण स्पीति घाटी को हरा भरा बनाने में विशेष भूमिका निभाई जा रही है। कहीं–कहीं रास्ते में लम्बे–लम्बे तीन–तीन किलोमीटर के सूखे मैदान रेगिस्तान का आभास करवाते हैं। शायद तभी इस घाटी को शीत मरुस्थल के नाम से ख्याति मिली है।

हंसा से आठ किलोमीटर की दूरी पर काज़ा की तरफ क्याटो गांव आता है। क्याटो में स्पीति नदी पर पुल पार करके काज़ा की तरफ वाहन योग्य सड़क है। क्याटो से पैदल मार्ग चिचिम गांव की ओर जाता है। चिचिम और क्याटो के बीच, क्याटो से 17 किलोमीटर पैदल चलने पर एक बहुत बड़ा मैदान पड़ता है जिसे लादरचा कहते हैं। लादरचा में किसी समय बहुत बड़ा व्यापारिक मेला लगता था जिसमें तिब्बत से व्यापारी आकर ऊन, पशम तथा घोड़ों का व्यापार करते थे। स्पीति घाटी के निवासी भी इस मेले में अपनी ज़रूरत की वस्तुएं खरीदते थे। इधर से होकर आजकल क्याटो से चिचिम तथा किब्बर के लिए वाहन योग्य सड़क निर्माणाधीन है। कुनिंघम ने तिब्बत से रूदोग् से पुगा, छोमो रिरि, कोरज़ोग, नूरदू समूद बलङग, पुारङला, डंखर, कुरजे, पङमो से होते हुए लोसर तक के गुप्त मार्ग का ज़िक्र किया है जिससे व्यापारी चोरी छुपे सामान इधर–उधर लाते थे। संभवतः लादरचा इस मार्ग में नहीं पड़ता होगा। स्पीति नदी के दायें तट पर क्याटो से 6–7 किलोमीटर की दूरी पर पाङमों गांव में एक मात्र बौद्ध विहार है जहां केवल बौद्ध भिक्षुणियां ही रहती हैं। बौद्ध भिक्षुणियों को चोमो कहा जाता है।

पाङमो गांव से रङरीक तक स्पीति घाटी की सुंदरता देखते ही बनती है। चारों ओर खुले मैदानों के बीच में आलू, मटर तथा जौ के खेत बड़े सुहावने लगते हैं। खेतीबाड़ी यहां के लोगों का मुख्य पेशा है। खेतों को सींचने के लिए पास के नाले से छोटी–छोटी कूहलें बनाकर पानी खेतों में पहुंचाया जाता है। प्रायः सितंबर तक फसल कट जाती है। उसके बाद अक्तूबर–नवम्बर तक खेतों को याक से जोता जाता है। याक के नाक की नथैल को एक आदमी पकड़कर आगे–आगे चलता है और दूसरा आदमी हल को संभाले जोतता है। जोतने के बाद गोबर और पाखाने की खाद डाली जाती है। बर्फ पिघलते ही अप्रेल–मई में फसल की बुआई की जाती है। यहां पर काठू, गेहूं, नंगा जौ, सरसों, छोटे मटर आदि की फसल होती है। याक हल जोतने का काम करता है और मादा याक जिसे चुरू कहा जाता है से दूध की पूर्ति होती है। हंसा से आगे क्याटो, याङमों, हल, गांवों से गुज़रते हुए लगभग 4 बजे हम रङरीक पहुंचे। लोग पारम्परिक वेशभूषा में खेतों में जौ तथा मटर की खेती करते हुए दिखाई दिए।

रङरीक घाटी का सबसे बड़ा गांव है जिसमें लगभग 125 घर है। रेङरीक में ठोङतो परिवार के बारे में अजेय ने एक प्रसंग सुनाया कहते हैं। रङरीक गांव का एक पुहाल बांसुरी बजाने में कुशल था। वह गर्मियों में भेड़ों को चंद्रताल की चरागाहों में चराने ले जाया करता था। एक बार वह बांसुरी में मस्त था, तभी एक युवती जिसे स्पीति की भाषा में खंड्रोमा कहा जाता है चंद्रताल झील से निकल कर उसके पास आकर बैठ गई। वह उसकी बांसुरी पर मुग्ध हो गई। कुछ समय बाद पुहाल ने बांसुरी बजानी बन्द करके आंखें खोली तो एक सुन्दर युवती को देख कर उस पर आसक्त हो गया। उसने उससे पूछा कि वह कौन है? युवती ने बताया कि वह परी है। स्पीति में परी को खंड्रोमा कहा जाता है। वह उसकी बांसुरी की मधुर धुन सुनकर यहां आई है। यह कहते ह ीवह मील में समा गई। कुछ दिनों तक यही क्रम चलता रहा। वह बांसुरी बजाता, परी आती और धुन सुनकर वापिस झील में समा जाती। एक दिन पुहाल ने परी का हाथ पकड़ लिया। परी हाथ छुड़ाने की कोशिश करने लगी परन्तु पुहाल के मज़बूत हाथों से अपने को मुक्त नहीं कर सकी। पुहाल ने उससे कहा कि वह उससे विवाह करना चाहता है। परी भी उसको चाहती थी, सो दोनों ने झील को साक्षी मानकर विवाह कर लिया। विवाह से पूर्व परी ने पुहाल से एक शर्त रखी कि वह केवल तब तक उसके साथ रहेगी जब तक वह विवाह की बात गुप्त रखेगा। जिस दिन भी किसी से इस बात का ज़िक्र करेगा तो उसी पल वह उससे सदा के लिए बिछुड़ जाएगी। पुहाल ने उसकी बात मान ली। पुहाल पहले से ही शादीशुदा था। वह सर्दियों में घर आ जाता और गर्मियों में चंद्रताल परी के पास चला जाता। एक दो वर्षों के बाद परी के गर्भ से एक शिशु ने जन्म लिया। एक सर्दी में जब पुहाल घर आया हुआ था तो किसी बात पर उसकी घरवाली से तू–तू मैं–मैं हुई। कहा सुनी में घरवाली ने उसे ताना दिया कि अगर वह उसका घर छोड़कर जाएगी तो उसे कौन सी परी मिल जाएगी। पत्नी की बात

सुनकर पुहाल ने भी तैश में आकर कहा, ''तू अगर मेरा घर छोड़कर जाएगी तो मैं चंद्रताल से परी को घर ले आऊंगा। उसके परी वाली राज़ खोलते ही उधर चंद्रताल में परी अन्तर्ध्यान हो गई पुहाल को भी अपनी बात पर दुख हुआ, परन्तु राज़ तो मुंह से उगल चुका था। वह चंद्रताल पहुंचा तो वहां केवल उसका बच्चा था, परी का कहीं नामो निशान नहीं था। शर्त के मुताबिक परी उसे छोड़कर जा चुकी थी। पुहाल ने बच्चे को घर लाकर उसे पालकर बड़ा किया। रङरीक का ठोङतो परिवार उसी के उतराधिकारी माने जाते हैं। इस तरह की न जाने कितनी कहानियां रहस्य व रोमांच से भरी पहाड़ों में प्रचलित हैं।

रङरीक के नाले पर दो मैगावाट की रोंगटोंग विद्युत परियोजना से स्पीति घाटी के अधिकांश गांवों को बिजली उपलब्ध होती है। रात्रि विश्राम के लिए रङरीक में हिमाचल प्रदेश राज्य विद्युत परिषद द्वारा बनाया गया विश्राम गृह है। रङरीक में अंग्रेज़ी माध्यम का एक स्कूल भी है जिसमें इस गांव के कुछ बच्चे पढ़ते हैं। बहुत बड़े मैदान पर बसे रङरीक गांव के सामने स्पीति का प्रसिद्ध कीह् गोम्पा स्थित है।

टीले पर स्थित कीह् गोम्पा में ही हमारा सेमिनार होना था। रङरीक से इसे देखने पर यहां पहंचने की उत्सुकता बढ़ती गई। दिल करता था कि रङरीक से ही उड़कर तुरन्त कीह् पहुंच जायें, परन्तु बीच में स्पीति नदी की बलखाती तरंगें बाधा थीं। रास्ता काज़ा होकर ही था। काज़ा की दूरी रंगरीक से लगभग आठ किलोमीटर है और इसकी ऊंचाई समुद्र तल से 3600 मीटर है। यहां सिंगल लाइन प्रशासन के तहत अतिरिक्त ज़िलाधीश घाटी का प्रशासन देखते हैं। काज़ा के बारे में निचले क्षेत्रों के कर्मचारियों में एक कहावत बहुत मशहूर है–

यह है खूबसूरत काज़ा
पर्यटकों को है इस जगह मज़ा
कर्मचारियों को है काले पानी की सज़ा।

हम शाम के 6.00 बजे काज़ा पहुंचे। जीप की मुरम्मत की और चाय की चुस्की भी काज़ा में ली। रोहतांग को पार करते ही जब हम लाहुल स्पीति घाटी में उतरे तो हम सब के मोबाइल फोन सिगनल बन्द हो गये थे। अतः काज़ा पहुंचते ही हमारी आंखे एस.टी.डी. की तलाश करने लगी ताकि अपने–अपने घर वालों को फोन से पहुंचने की सूचना दे सकें। सबसे ज़्यादा उत्सुकता उरज्ञन जी को थी। उन्होंने जल्दी से चाय पी और एस.टी.डी. बूथ की तलाश में निकल पड़े। मुख्य मार्ग से अन्दर काज़ा के बाज़ार की एक गली में उन्हें एस.टी.डी. बूथ मिल ही गया। बूथ में जाने पर उन्हें बताया गया कि पिछले दो दिनों से काज़ा में बिजली नहीं है। इसलिए सारे टेलीफोन बन्द पड़े हैं। सो उरज्ञन जी बेरंग होकर वापिस लौट गए। इसके बाद हम कीह् गोम्पा की ओर चल पड़े।

टीले पर स्थापित कीह् गोम्पा के निर्माण में छङ समतो शेरब ज़ङपो ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। माना जाता है कि शेरब ज़ङपो ने तिब्बत से अपने बहुत से अनुयायियों के साथ इस स्थान पर आकर इसका निर्माण करवाया था। उसके साथ उसके शिष्य शेरब लोडो ने गोम्पा निर्माण को गति दी थी। 4116 मीटर ऊंचा कीह् गोम्पा काज़ा से 12 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहां पर लामाओं को प्राशिक्षण दिया जाता है। कीह् गोम्पा में अवतारी रिन–चेन–ज़ङपो की गद्दी विराजमान है जो लोछेन परम्परा में छटे अवतारी पुरुष हुए हैं। लोचावा रिन–चेन–ज़ङपो जिनका कार्यकाल सन् 958 ई. से 1055 ई. के बीच का रहा है, महानुवादक रहे हैं। इनका जन्म सतलुज घाटी में क्युवङ क्षेत्र के गांव रदनी में हुआ था। उनके जन्म के समय यह क्षेत्र राजा गुगे–जुङ–जुङ के अधीन था। गुगे जङ जुङ ने बौद्ध धर्म का प्रचार प्रसार करने के निमित्त रिन–चेन–जङपों को उनके कुछ साथियों के साथ बौद्ध धर्म की शिक्षा ग्रहण करने के लिए कश्मीर भेजा था। वहां से शिक्षा ग्रहण करने के बाद इन्होंने बौद्ध सूत्रों का संस्कृत से भोटी भाषा में अनुवाद किया था। आज तक इनके द्वारा की गई 174 संस्कृत की भोटी भाषा में अनूदित पुस्तकें उपलब्ध हैं। लोछेन की गद्दी परम्परा में आजकल महामहिम तेनज़िन कलज़ङ रिन–चेन–टुलकू रिम्पोछे 19वें अवतरी हैं। कीह गोम्पा कुल्लू से काज़ा जाते हुए क्युरिक गांव से स्पीति नदी के बाईं ओर के तट पर किसी किले की तरह दिखाई देता है। दूर से देखने पर लगता है कि सभी घर एक दूसरे से सटे पड़े हैं। गोम्पा के दक्षिण और उत्तर में विशाल द्वार बने हुए हैं। दोनों द्वार बन्द कर दिए जायें तो इस विहार में चोर, डाकू या कोई बाहरी व्यक्ति प्रवेश नहीं कर सकता। यह भी माना जाता है कि इस गोम्पा के अन्दर ही अन्दर से एक सुरंग नीचे नदी में जा मिलती है। जब कभी बाहरी आक्रांता यहां पर आक्रमण करते थे तो ये द्वार बंद कर दिए जाते थे। जिससे वे गोम्पा में प्रवेश नहीं कर पाते थे। गोम्पा के बाहर कई दिनों तक बाहरी आक्रांताओं के होने के कारण गोम्पा में रहने वाले भिक्षु लोग इस सुरंग से होकर नदी पर जाकर भोजन बनाने के लिए पानी लाते थे।

रिन–चेन–जङपो साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सभा, केलंग द्वारा लाहुल–स्पीति के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन पर तीन दिन का सेमिनार कीह् गोम्पा में आयोजित किया जा रहा था। इसीलिए हम लोग कुल्लू से इस सेमिनार में भाग लेने आये हुए थे। सूरज पश्चिम की पहाड़ियों के नीचे जा चुका था। अन्धेरा होने वाला था। हमारी जीप भी गोम्पा के मुख्य द्वार के नीचे पहुंच गई। वहीं पर कार्यक्रम के आयोजक एवं रिन–चेन–जङपो संस्था के उपाध्यक्ष छ़ेरिङ दोर्जे हमारा स्वागत करने तैयार खड़े थे। उन्होंने हमारा गर्मजोशी से स्वागत किया। हमने अपना–अपना सामान जीप से उतारा और गोम्पा के मुख्य द्वार की तरफ चलने लगे। लगभग पचास सीढ़ियां चढ़ने के बाद मुख्य द्वार था। जैसे ही मैंने पहली सीढ़ी पर पांव रखा मेरे शरीर में कम्पन पैदा हो गया। सांस फूलने लगी। हालांकि मैंने इससे भी ऊंची–ऊंची जगहों में यात्रा की है परन्तु न जाने आज मेरी सांस क्यों फूलने लगी। हमारे दूसरे साथी आगे निकल गए। मैं सीढ़ी पर बैठा रहा। काफी ऊपर जाकर हीरालाल ने देखा कि मैं पहली सीढ़ी पर ही बैठा हूं। उन्होंने ऊपर से मुझे आवाज़ दी ''डॉ0 साहब आप नीचे क्यों बैठे हैं। आ जाओ।''

''मेरा सांस फूल रहा है और मुझे चक्कर आने लगे हैं।'' मैंने नीचे से ही जवाब दिया। मेरी बात सुनकर वे तुरन्त नीचे आये और मेरा पिट्ठू अपने कंधे पर डालकर मुझे एक हाथ से पकड़कर ले जाने लगे। तब तक मैं संयत हो चुका था। मैंने उन्हें कहा कि मैं अब चल सकता हूं।

धीरे–धीरे मैं मुख्य द्वार पर पहुंचा। मेरी हालत देखकर छ़ेरिङ दोर्जे ने बताया कि यहां पर ऑक्सीजन की कमी रहती है इसीलिए आपको चक्कर आ रहे हैं। कुछ समय में आप यहां के वातावरण में ढ़ल जाएंगे, तब आप ठीक हो जाएंगे। जो व्यक्ति पहली या दूसरी बार यहां आता है उसको कभी–कभी इसी तरह से चक्कर आने लगते हैं।

मुख्य द्वार के अन्दर प्रवेश करने पर आठ दस भिक्षु लामाओं ने हमारा 'जुले' कह कर स्वागत किया। वे हमें अतिथि कक्ष में ले गये। अतिथि कक्ष भव्य तरीके से सजा हुआ था। यहां के रिम्पोछे टुलकू इसी कक्ष में मेहमानों से मिलते हैं। कमरे के एक तरफ उनकी गद्दी रखी गई है। जिसमें उनके सिवाय दूसरा कोई नहीं बैठ सकता। वे इस वक्त मठ में नहीं थे। कहीं गए हुए थे। छ़ेरिङ दोर्जे ने बताया कि कल सेमिनार का उद्घाटन वे ही करेंगे। उस समय ही उनसे मुलाकात हो सकेगी। हम अभी कक्ष का अवलोकन कर ही रहे थे कि तभी एक भिक्षु लामा चाय और दूसरा बिस्कुट लेकर आ गया। उस समय चाय का मिलना मेरे लिए औषधि से कम नहीं था। चाय पीने के बाद ही मैं सामान्य हो पाया। चाय पीने के बाद हमें उस कक्ष के ऊपर के कमरों में ले जाया गया। जहां मेहमानों के लिए पांच कमरे बनाये गए हैं। चूंकि सभी गत रात तीन बजे से ही जागे हुए थे। इसीलिए अपने कपड़े आदि बदलने के बाद सभी अपने–अपने बिस्तरों पर सुस्ताने बैठ गए। नौ बजे एक लामा हमें भोजन के लिए बुलाने आ गए। भोजन के बाद सभी शीघ्र ही नींद की आगोश में समा गए। अगली सुबह आठ बजे तक हम सभी उठ चुके थे। एक भिक्षु कमरे में ही चाय दे गया और साथ ही नौ बजे तक नाश्ते के लिए डायनिंग कक्ष में आने का न्योता दे गया।

नहा धोकर ठीक नौ बजे हम सभी डायनिंग कक्ष में थे। कुछ परांठे और आलू की सब्ज़ी मेज़ पर सजी हुई थी। चाय की एक थर्मस भी रखी थी। मैंने शाम से ये दो ही भिक्षु खाना खिलाने और चाय नाश्ता करवाते हुए देखे। मैंने छ़ेरिङ दोर्जे से पूछा कि क्या ये भिक्षु यहां रयोइये का काम करते हैं? छ़ेरिङ ने कहा ''नहीं ये दूसरे भिक्षुओं की तरह ही हैं। यहां पर इन्हें धर्म ग्रंथों की पढ़ाई के याथ–साथ खाना बनाने का काम भी सिखाया जाता है। सभी भिक्षुओं को बारी–बारी से रसोई में काम करना पड़ता है और मठ की सफाई आदि भी करनी पड़ती है।' नाश्ते से निपटने के बाद हम सब बड़े हाल में गये। यह हाल सन् 2000 ई. में आयोजित कालचक्र समारोह के लिए बनवाया गया है। हाल में भगवान बुद्ध की भव्य मूर्ति विराजमान है। मूर्ति के दायें–बायें बहुत से दीप प्रज्वलित किए हुए थे। हमारे सहित मठ के सभी लामा और भिक्षु भी इस हाल में एकत्रित हुए। ठीक 11.00 बजे रिम्पोछे टुलकू जी पधारे। उन्होंने दीप प्रज्वलित करके सेमिनार का शुभारम्भ किया। छ़ेरिङ दोर्जे ने उनका स्वागत करते हुए सेमिनार के उद्देश्य से अवगत करवाया और रिम्पोछे जी से हमारा परिचय करवाया। अपने अध्यक्षीय भाषण में रिम्पेछे ने कीह् मठ में सेमिनार करने पर खुशी व्यक्त करते हुए कहा कि जिस काम को रि–चेन–जङपो सभा कर रही है उसका उल्लेख भगवान बुद्ध ने भी अपने उपदेशों में किया है। उन्होंने मठ की महत्ता के बारे में बताया कि भिक्षु या लामा उस व्यक्ति विशेष को कहा जाता है जो सांसारिक प्रपंचों को त्याग कर भगवान बुद्ध के दिखाये मार्ग पर चलकर गोम्पा में प्रवेश करता है। उद्घाटन सत्र के बाद टुलकू जी ने हमारे साथ ही भोजन किया।

भोजन के बाद उन्होंने एक वरिष्ठ लामा से हमें मठ को दिखाने का आग्रह किया। हम लामा के साथ हो लिए। इस गोम्पा में एक बड़ा पूजा कक्ष, पांच प्रमुख कक्षों के अलावा कई छोटे–छोटे पूजा कक्ष तथा लामाओं के रहने के कक्ष हैं। बाहर से साधारण दिखने वाला यह गोम्पा अन्दर से सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाया गया है। यहां प्रतिवर्ष जुलाई–अगस्त में छम नृत्य का आयोजन होता है। जिसमें लामागण मुखोटे पहनकर छम नृत्य करते हैं। तमाम मुखोटे किसी विशेष देवता के प्रतीक माने जाते हैं। कहते हैं कि ये देवता अलौकिक शक्ति के स्वामी इनकी हर कठिन परिस्थितियों में रक्षा करते हैं। छम नृत्य का उद्देश्य तांत्रिक देवताओं को प्रसन्न रखकर इस संसार के समस्त प्राणियों को रोग, शोक, व दुखों से मुक्ति दिलाना है। इस विहार में सन् 2000 ई. में परम् पावन दलाई लामा द्वारा कालचक्र तंत्र अभिषेक का आयोजन हुआ था।

गोम्पा के सबसे ऊपर प्रार्थना कक्ष है जिसे दुखङ कहते हैं। इसके साथ ही उत्तर तथा पश्चिम की तरफ प्रवेशित मणि लखंङ तथा नगपो कु सुम के कक्ष हैं। प्रार्थना कक्ष में शाक्यमुनि की प्रमुख मूर्ति विराजमान है। मणिलखङ में युम्छेन्मो की मूर्ति उत्तर–पूर्व में अवस्थित है। इसी कक्ष के उत्तर–दक्षिण में शाक्यमुनि, दक्षिण–पश्चिम में गुरु रिम्पोछे और दक्षिण–पूर्व में चोङखपा की प्रतिमा विराजमान है। नगपो कु सुम सबसे पुराना कक्ष है जो गोम्पा के संस्थापक तोशेरब ज़ङपो और उसके शिष्य शेरब लोडो को समर्पित है। इन कक्षों के भित्तिचित्रों में जातक कथाओं के पात्रों को अंकित किया गया है। कक्षों के नीचे रसोई का कमरा, रिम्पोछे के रहने का भवन तथा लामाओं के रहने हेतु अन्य भवन बने हैं। यहां पर 250 बौद्ध भिक्षु शिक्षा ग्रहण करते हैं। कीह् गोम्पा से काज़ा से लेकर पङमो तक का सारा क्षेत्र दृष्टिगोचर होता है। गोम्पा के पीछे पहाड़ी की तरफ एक राजकीय माध्यमिक विद्यालय भी है।

दोपहर 3.00 बजे दूसरे सत्र में तोबदन ने स्पीति के एक लोकगीत का उल्लेख करते हुए स्पीति वासियों का ईश्वर के उत्पन्न होने का वर्णन किया।

दाङ्–पो मे–तोग् गङ्स् युलदु ठुङस्।
बर–दु मे–तोग चन–युल दु ठुङस्।
था–मर मे–तोग लू–युलदु ठुङस्।
छा–नी मे–तोग मी–युल दु ठुङस्।

अर्थात् पुष्प प्रथम हिमप्रदेश में उत्पन्न हुआ। पुष्प मध्य में पिशाचों के प्रदेश में उत्पन्न हुआ। पुष्प अन्त में नागों के प्रदेश में उत्पन्न हुआ। पुष्प अब की बार मानव प्रदेश में उत्पन्न हुआ।

वर्तमान में प्रचलित एक गीत के बारे में भी तोबदन ने वर्णन किया। जिसका भाव उन्होंने इस प्रकार बताया :– ''पर्वत के शिखर पर जब पूर्णमासी के चंद्रमा का उदय होता है तो लगता है पवित्र लामा ज़ङपो का आगमन हो रहा है। ग्रीष्म ऋतु जब आती है तो मालूम होता है कि जैसे परम् पूजनीय प्रमुख लामा अपने पवित्र पीले वस्त्र धारण किए हुए है। सर्दियों के मौसम में यह प्रकृति रूपी लामा शंख का श्वेत रंग धारण करता है।''

दूसरे सत्र की समाप्ति के बाद उरज्ञन जी ने किब्बर गांव देखने की इच्छा व्यक्त की उनका समर्थन अजेय, हीरालाल, मनेपा, खूबराम और मैंने भी किया। अतः हमने जीप के ड्राइवर को किब्बर ले जाने का आग्रह किया। छेरिङ और तोबदन अगले दिन के सत्र की तैयारी में लगे रहे। हम पांच लोग किब्बर की ओर चल पड़े।

किब्बर गांव कीह् से 6 किलोमीटर दूर पश्चिम की तरफ स्थित है। 4200 मीटर की ऊंचाई पर स्थित किब्बर गांव किसी समय एशिया का सबसे ऊंचा गांव था जो वाहन योग्य सड़क से जुड़ा हुआ था। अब गेते 4270 मीटर सबसे ऊंचा वाहन योग्य सड़क से जुड़ा गांव बन गया है। किब्बर में 60–70 घर हैं और आबादी लगभग 400 है जबकि गेते की आबादी 30 है। यही कारण है कि गेते को वह प्रसिद्धि नहीं मिली जो किब्बर को मिली। किब्बर के ठीक सामने तीन किलोमीटर की दूरी पर गांव चिचिम खूबसूरत ढलान पर स्थित है। किब्बर में अधिकांश मकान दड़बेनुमा दो मंज़िला हैं। घर की दीवारें मिट्टी की बनी हुई होती हैं। जिससे सर्दियों में घर के अन्दर ठण्ड नहीं लगती। छत पर लकड़ियों की शहतीरों के ऊपर मिट्टी को कूट–कूट कर छत बनी हुई है। उसके ऊपर जलाने की लकड़ियां तथा झाड़ियां रखी गई हैं। जिन्हें सर्दियों में जलाने के काम में लाया जाता है। घर की मुख्य दीवार के ऊपर छतों पर याक की पूंछ भी लटकी हुई देखी जा सकती है। याक की पूंछ रखने के बारे में स्थानीय युवक तेनज़िन ने बताया कि ये बुरी आत्माओं से बचाव के लिए लगाई जाती हैं। याक के

बालों से ब्रश और रस्सियां आदि भी बनाई जाती हैं। एक दो सरकारी कार्यालय व स्कूल भवन आधुनिक ढंग से सीमेंट पत्थर की चिनाई से बने हैं। किब्बर को अपने कैमरे एवं ज़हन में उतारने के बाद अंधेरा होने तक हम वापिस कीह् लौट आए।

अगले दिन प्राप्तः के सत्र में छेरिङ दोर्जे ने अपने शोधपत्र में स्पीति के इतिहास पर विस्तार से प्रकाश डाला। इन्होंने कहा कि स्पीति के इतिहास में सबसे पहले सेन वंश का उल्लेख मिलता है। प्रारम्भ में स्पीति में सेन वंश के राजाओं का शासन था। स्पीति के राजा समुद्रसेन का सातवीं सदी का एक ताम्रपत्र कुल्लू ज़िला के निर्मण्ड गांव में है। इसमें वरूणसेन, संजयसेन, रविसेन, समुद्रसेन आदि के नाम लिखे मिलते हैं। स्पीति के शासक राजेन्द्र सेन ने 600–650 ई. के मध्य कुल्लू के राजा रुद्रपाल पर आक्रमण किया था और बिजय पाई थी। बाद में कुल्लू के राजा प्रसिद्धपाल ने रोहतांग के कंचन कोट में पुनः युद्ध कर स्पीति पर अधिकार प्राप्त किया था। यह भी माना जाता है कि कुल्लू राजा के बज़ीर सोभाराम ने अपने एक निटक के रिश्तेदार के नेतृत्व में भेजी गई सेना को कुन्ज़ोम दर्रे पर आक्रमण करके रङरिग अर्थात् रङरीक तक के क्षेत्र को अपने कब्ज़े में कर लिया था। उस समय डंखर के किले में लद्दाख राजा द्वारा खरपोन गगा–रब–ग्यस नियुक्त था। इसका ज़िक्र जार्ज ट्रेबेक ने भी किया है। प्रसिद्धपाल के बाद स्पीति पर तिब्बत का हमला हुआ था। जिससे कुल्लू के राजा का अधिकार समाप्त हो गया था। यह भी माना जाता है कि कुल्लू नरेश मानसिंह ने स्पीति पर चढ़ाई करके वहां अपना साम्राज्य स्थापित किया था। वहां एक दुर्ग भी बनवाया जिसे स्पीति के लोग ञ्युङति खर कहते हैं। इसके अवशेष अब भी पिन नदी के निटक भाभा और रुपिम जोतों के बीच मिलते हैं। सर एल.डेन ने इस दुर्ग को राजा जगतसिंह द्वारा बनवाया हुआ बताया है। ..... **क्रमशः**

आयोजन

'लाहुल के विभिन्न समुदायों में मृतक संस्कार' (विषय पर सेमीनार)

स्वंगलो सिटिज़न्ज़ फोरम सन् 2006 से लाहुल के रीति रिवाज़ों, त्यौहारों, ज्वलंत समसामयिक विषयों पर सेमीनारों का आयोजन कर रहा है। जिस से कि कुल्लू में रह रहे लाहुलियों में सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना के संचार के साथ सतत संवाद बनाए रखा जा सके। इसी क्रम में 27 फरवरी, 2011 को बदाह गोम्पा सभागार में 'लाहुल के विभिन्न समुदायों में मृतक संस्कार' विषय पर सेमीनार का आयोजन किया गया। जिस का संक्षिप्त विवरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

कार्यवाही सार संक्षेप

कर्नल प्रेम चन्द द्वारा स्वागत भाषण – श्री सुख दास जी जो कि सच्चे अर्थों में गुरु हैं, उन का तथा सब का स्वागत है। संस्कृति, समाज, पर्यावरण जैसे मुद्दों पर चिंतन करते रहना, बुद्धिजीवी वर्ग का कर्त्तव्य है। मृत्यु एक शाश्वत सत्य है। अच्छा होगा कि मनुष्य अपने पश्चातापों से मुक्ति पर कर मरे। गुरु पद्म संभव ने चन्द्रभाग संगम को आठ महाशमशानों में से एक के रूप में पहचान की है। और पार्श्व में स्थित ड्रिल्बु को गुरु घंटापा ने चक्र संवर का मंडल कहा है। लोगों के बीच संवाद स्थापित किए रखना ऐसे सेमीनारों का उद्देश्य है।

पत्र प्रस्तुतियां

1 **श्री तोबदन :– तोद में शव दाह का रिवाज़** – शरीर में से उस को चलाने वाली शक्ति निकल जाने पर वह शव बन जाता है। तोद में बौद्ध विधि से शव दाह किया जाता है। मृत्यु के समय 'बरदो थोडोल' ग्रन्थ का पाठ किया जाता है। अर्थी में शव को कुर्सी में बैठने की स्थिति में सजाया जाता है। महिलाओं को आभूषणें के साथ ले जाया जाता है। यह एक पूर्व बौद्ध प्रचलन है। शव को सजाने आदि का काम करने वाले को 'रोबदग' कहते हैं। मृत्यु के दूसरे दिन 'छवा' करते हैं। हर सप्ताह साप्ताहिक पूजा 'दुनछिग' होता है और 49 दिन में दुनछिग पर लमतोन का पाठ करते हैं। यदि मृतक ने कोई संदेश रखा हो तो वह बताया जाता है। मृत्यु वह बिन्दु है जहां से एक जीवन खत्म होता है और दूसरा जीवन आरंभ होता है।

2 **श्री रूप सिंह ठाकुर :– तिनन वेली में मृतक संस्कार** – किसी की मृत्यु हो जाने पर सब से पहले गांव तथा रिश्तेदारों को सूचना दी जाती है और लामा को बुलाया जाता है। मृतक को 'फग्पा' (त्रिलोकनाथ) की ओर या पूर्व की ओर सिर कर के एक मुट्ठी मिट्टी बिछा कर भूमि पर लिटा दिया जाता है। लोग सत्तू, धी, मक्खन ले कर आते हैं, पूजा समग्री के लिए। लामा फोआ अनुष्ठान करता है। शव को नहलाया जाता है। नहलाने के बाद कुछ देर के लिए शव को पूर्व की ओर कोने पर बिठाए रखा जाता है। कुर्सी जैसी अर्थी बनाई जाती है। अर्थी पर चादर और आभूषण डाल कर उसे वापिस लिया जाता है, श्री को लौटाने के लिए। 49 दिन से ले कर एक वर्ष के बीच 'छ़ोकोर' (=श्राद्ध) दिया जाता है। लामा लोगों को वस्त्र दान दिया जाता है जिसे बुलः' कहते हैं। अस्थु संगम में प्रवाहित करते हैं, इसे पूरा आभूषणों से सजा कर ले जाते हैं। जिस बच्चे के दाँत न निकले हों उसे दफनाया जाता है।

3 **श्री छ़ेरिंग दोरजे :– गाहर घाटी में मृतक संस्कार** – गाहर के मृतक संस्कार की विधि तिनन से मिलती जुलती है। गांव और रिश्तेदारों को समाचार पहुंचाया जाता है और लामा को बुलाया जाता है जो क्रिया कर्म को निर्देशित करता है। लामा सर्वप्रथम फोआ देता है। इस के बाद सूत्रों का पाठ किया जाता है फिर अर्थी सजाई जाती है। इस के बाद 'यङखुग' (श्री प्रत्यावर्तन विधि) सम्पन्न किया जाता है।

बांसुरी और नगाड़े पर शोक धुनें बजाई जाती हैं। जलती चिता में लामा द्वारा हवन किया जाता है। शमशान से लौट कर लामा गण पंच कुल बुद्धों की पूजा करते हैं। लामा प्रातः–सायं घी में भूने सत्तू का धूप तथा सपिंड विधि सम्पन्न करते हैं। दम–पा रिग्स–ग्या का पाठ तथा शुगु–रोट्रि (पत्र–भस्म विधि) भी की जाती है। आत्मा 49 दिनों तक महा शून्य में भटकता है फिर 6 योनियों में से किसी एक में जन्म पाता है। यद्यपि बौद्ध धर्म में आत्मा नहीं स्वीकारा जाता फिर भी मृतक संस्कार कर्म में लामा गण इस के अस्तित्व को मानते हैं। 7 सप्ताह के बाद गेवा (श्राद्ध) का आयोजन किया जाता है जिस में आस पड़ोस के लोगों को बुला कर भोजन आदि दिया जाता है, दान दिये जाते हैं और तीर्थों में जाकर पूजा की जाती है।

चर्चा :– श्री प्रभात भानु, श्री बिशन परशीरा, कर्नल श्री प्रेम चन्द अदि ने कई प्रश्न पूछे।

उतर :– फोअ, विधि बौद्ध नहीं अपितु भारतीय सिद्ध परम्परा से ली गई है। इस में आत्मा को बुला कर फिर से शरीर में प्रवेश करा कर सिर के श्रेष्ठ द्वारों से पुनः बाहर निकाला जाता है। इस में मृतक के नाक से खून आते स्वयं देखा है। रोलङ का हिन्दी शब्द बेताल है। यह एक काल्पनिक चीज़ है। तिब्बत के लोग शव को 18 टुकड़े कर के पक्षियों को खिला देते हैं ताकि उन का शरीर भी किसी प्राणी के काम आ सके। इस में अहम् को काटने जैसी कोई बात नहीं है। बोन धर्म का इतिहास 4–5 हज़ार वर्ष पुराना है।

4 **श्री राम नाथ पटन घाटी में मृतक संस्कार** – मृत्यु पश्चात मृतक को मिट्टी के ऊपर लिटाते हैं। लामा को बुलाया जाता है। सिर के पास दिया जलाते हैं। मृतक का सिर भ्यार (त्रिलोकनाथ) की ओर रखा जाता है। जितनी जल्दी हो फोआ दिया जाता है। नहलाने के बाद दीवार के साथ बिठाया जाता है जिसे योल्बा–चचि़ कहते हैं। पुरुष को टोपी तथा स्त्री को आभूषण पहनाए जाते हैं। दो सीधे तथा पांच आडे डंडों को थल्ज़ नामक रस्सी से जोड़ कर अर्थी बनाई जाती है। सफेद चादर और आभूषण अर्थी पर रख कर वापस लिया जाता। यह यङ लौटाने के लिए होता है। लामा यंखुग करता है। और कुछ पैसे दान बेलः डाले जाते हैं जिसे वादक ग्रहण कर लेते हैं। मार्ग में 5–7–9 बार विश्राम किया जाता और बेलः डाला जाता है। पांच आड़े डंडों की सीढ़ी बना कर कोठः यानि चिता के सहारे खड़ा कर दिया जाता हैं, इसे स्वर्ग की सीढ़ी कहते हैं। यह लुहार बनाता है। बदले में शमशान का बेलः उसे दिया जाता है।

5 **श्री लाल चन्द शास्त्री चिनल और स्वङला समुदाय में मृतक संस्कार** – सोलह संस्कारों में सब से महत्वपूर्ण है अन्त्येष्टि। मृतक के पार्थिव शरीर को शव नहीं अपितु 'फूल' कहा जाता है। फूल को भ्यार की ओर सिर कर के लिटाया जाता है फर्श पर। सफेद चादर लपेट कर, दीया और धूप ज़लाया जाता है। मुख में पंच रत्न डाला जाता है। स्नात पानी को बेटा और जमाई फैंकते हैं। पति की मृत्यु पर पत्नी के कुछ बाल काट कर पति के पैर के साथ बांध देते हैं। फूल को बाहर निकालने पर बाहर की तरफ पीठ कर के गोबर–गोमूत्र–गंगाजल की लिपाई करते हुए दरवाज़े तक लिपाई करते हैं। इसे स्वर्ग का रास्ता भी कहते हैं। आंगन में तीन बार सुल्टी और तीन बार उल्टी परिक्रमा करते हुए गोदान किया जाता है। भाट अपना पाठ पूरा करते हैं। फिर हेल–बेल डाला जाता है। मृतक की याद में 'न्हद' (विश्राम–स्थल) बनाए जाते हैं। सामा भी करते हैं।

चर्चा– इस विषय में कर्नल प्रेम चन्द एवं बलदेव घरसंगी ने अपने प्रश्न पूछे।

उत्तर– मृत्यु के समय शुर के स्थान पर सुर इस लिए जलाया जाता है क्योंकि सत्तू पवित्र होने के साथ पुष्टि दायक भी है, जो पितरों को पहुंचता है। वेद पुराणों की ऋचाओं का वादन सितूर है। सुगिलि खुशी और गमी दोनों के होते हैं। गमी वाले में मृतक के चरित्र का बखान होता है। गर्भवती महिला की मृत्यु पर गर्भ का छेदन किया जाता है। आठ दिन तक के शिशुओं को दफनाया जाता है। उससे बड़ों को अलग शमशान में जलाते हैं।

6 **श्री शेर सिंह मनेपा–तिनन व रंगलो घाटी में मृतक संस्कार** – (अनुपस्थिति में पढ़ा ममा पत्र) – बौद्ध धर्म के अनुसार मृतक संस्कार किया जाता है। मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न योनियों में जन्म पाता है। पनर्जन्म पर विश्वास किया जाता है। मरणासन्न व्यक्ति के मुंह में चिन्लब, डाला जाता है। मुत्यु होने पर सूचनाएं भेजी जाती हैं। लामा बुलाए जाते हैं। मुख्य लामा फोआ देता है। लामा के आने से पहले मृतक को छुआ नहीं जाता। फोआ के बाद पार्थिव शरीर को नहलाया जाता है। और एक कोने में पद्मासन में बिठाया जाता है इसे योल्बा–चचि कहते हैं। मृतक के मुख में सोने का टुकड़ा और चांदी का सिक्का डाला जाता हैं। मुल डोम्बा अर्थी तैयार करता है। सफेद ऊन के ऊपर रख कर कुछ पैसे दान किए जाते हैं। जिसे मुल डोम्बा उल्टी परिक्रमा करता हुआ संभाल लेता है। जो मृतक के शरीर को छूते हैं उन्हें रोब्दगपा कहते हैं। अर्थी सज जाने पर लामा यंखुग अनुष्ठान करते हैं। शव यात्रा पर ढोल–नगाड़ा–बांसुरी बजाते हैं। शंख भी बजाते हैं। अर्थी के आगे–आगे एक व्यक्ति थोड़ा–थोड़ा दूध गिराता हुआ चलता है। चिता की लकड़ी पर शव को पद्मासन में बिठाया जाता है। शव के चारों ओर लकड़ी चिन कर चिता तैयार की जाती है कि मृतक का कोई भी अंग बाहर दिखाई नहीं देता। लामा चिता की अग्नि में हवन करता है। धर्म लकड़ी डाल कर लोग वापस आते हैं। अगले दिन अस्थियों को सुमदो में प्रवाहित करने के लिए सजा कर ले जाते हैं। छोगा, तम्बारिगे, बुला आदि अनुष्ठान करते हैं और अन्त में छ़ोकोर अनुष्ठान किया जाता है।

7 **श्री छाया राम** – मृतक संस्कार की जगह मरण संस्कार कहना ज़्यादा अच्छा होता। जीवन के बाद मरण अवश्यम्भावी है। मुत्यु के बाद घर को अशुद्ध समझा जाता है, और खाना–पीना बन्द कर दिया जाता है। यह धारणा कहां से आई होगी, इस पर विचार किया जाना चाहिए। गाहर घाटी इस का अपवाद है। वहां खान–पान का परहेज़ नहीं रखा जाता अपितु इस के विपरीत बात देखी जाती है जो कि कम से कम कुल्लू के माहौल में ठीक नहीं लगता। हमें अपनी रीति रिवाज़ों की कमियों को ठीक करना चहिए। कुरीतियों को खत्म करना चाहिए। इस के लिए प्रबुद्ध लोगों को पहल करनी चाहिए अन्यथा सुधार आ ही नहीं सकते।

8 **चर्चा**– श्री तोबदन– दूसरों को सुधारने के लिए कहना ठीक नहीं। क्योंकि अपने–अपने दृष्टि कोण से सब ठीक हेाते हैं।

श्री रूप सिंह ठाकुर– सुधार के लिए किसी को आगे आकर पहल करनी ही पड़ती है।

श्री बिशन दास परशीरा– किसी के भला या बुरा कहने मात्र से सदियों पुराने रीति रिवाज़ों को छोड़ देना भी ठीक नहीं। उनके पीछे निहित तर्क और भावना की व्याख्या की जा सकती है।

श्री दोर्जे अंगरूप गड़फा– जो लोग कुल्लू में रह रहे हैं कम से कम उनको एक सर्वमान्य परिपाटी को अपनाना चाहिए जो कुल्लू के माहौल के भी अनुकूल हो। लाहुल में अपना–अपना करते रहो।

डॉ. बीर सिंह साहनी– सुधार तुरन्त और अपने से शुरू की जानी चाहिए। आइये मृत्यु के दिन मार्चु परोसना तो बन्द करें!

श्री प्रभात चन्द्र भानु– तोबदन जी से सहमत हूं। सुधार हमेशा अपने से आरंभ होनी चाहिए।

श्री डी.सी. ठाकुर– (अनुपस्थिति में पढ़ा गया पड़ा) – अब तक कई गोष्ठियां हो चुकी हैं। उन के निष्कर्षों की समीक्षा की जानी चाहिए। कुछ सुधार आए हैं तो स्वागत योग्य है। अन्यथा चिंतन करना ज़रूरी है कि कहां कमी रह गई है। जो लोग ऐसे सुधारों के बारे में विचार प्रस्तुत करते हैं, सब से पहले उन लोगों को अपने सुझावों की अनुपालना कर के समाज के सामने उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए।

10 **श्री सतीश लोप्पा – मृतक संस्कार में राग विधान** – मृतक संस्कार के समय अनेक प्रकार की धुनें बनाई जाती हैं जिस के माध्यम से मृतक के परलोक का मार्ग प्रशस्त किया जाता है। इस में सितूर तथा मतवाड़ी समूह के राग आते हैं। मृत्यु के बाद–दाह संस्कार तक जो राग बजाए जाते हैं उन्हें सामूहिक रूप से सितूर कहते हैं जिसमें, धामिणि, माऽर, पानी फैंकने का राग, दुद्धाधार, भाटि या गोउत्री, पुर्कताल, मोड़ेराग/ जेठा राग, शव यात्रा के राग, बेलअ डालने का राग, अग्नि देने का राग आदि शामिल हैं। इन्हें अशुभ राग माना जाता है। इस के इलावा अस्थु यात्रा के समय मुख्यतः मतवाड़ी राग बजाए जाते हैं। जिस में सीमि मतवड़ी, सुर्ज मतवाड़ी, देव मतवाड़ी अस्थि विसर्जन राग आदि शमिल हैं। अस्थु एकत्रण से पूर्व प्रातः प्रोउहात राग बजाया जाता है जिसकी एक पूरी शृंखला होती है। मतवाड़ी रागों को अशुभ नहीं माना जाता है।

11 **श्री सुख दास जी** – (मुख्य अतिथि) – लाहुल के विभिन्न समुदायों के लोग और उन की रीतियां–परिपाटियां, रिवाज़ात, एक फुलवारी के फूलों की तरह हैं– रंग बिरंगे। विषमता में भी समभाव, यही यहां की खूबसूरती है– यह सदा बनी रहनी चाहिए। रीति रिवाज़ों में देश–काल का ध्यान रखना आवश्यक है। मृतक संस्कार कुल्लू वालों की तरह करना बहतर होगा। यद्यपि मैं कुल्लू और लाहुल को अभिन्न मानता हूं। हमारा दृष्टि कोण व्यापक होना चाहिए। दर्शन हमें जाति–धर्म–सम्प्रदाय से ऊपर उठने की शिक्षा देता है। हमारा चिंतन ऐसा होना चाहिए।

12 **श्री शिव चन्द ठाकुर – अध्यक्षीय भाषण**– सेमीनार के सारांश को लोगों तक पहुंचाया जाना चाहिए। किताबों, अखबारों, रिसालों, और पम्फलेटों के ज़रिए लोगों तक यह बात जानी चाहिए तभी फायदा होगा।

प्रस्ताव – श्री राम नाथ ने प्रस्ताव रखा कि किसी विवाहिता महिला की मृत्यु होने पर उसके मायके वालों के घर मातम पुर्सी के लिए नहीं जाना चाहिए, यह लाहुली परम्परा के मुताबिक बुरा माना जाता है। सभा ने सर्वसम्मति से इस प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया और आगे ग्राउंड लेवल पर अमल की उम्मीद व्यक्त की।

(प्रथम सत्र समाप्त)

प्लेनरी सत्र

जिस्पा डेम परियोजना पर परिचर्चा

1 जिस्पा बांध के सकारात्म और नकारात्म पक्षों पर गहन चर्चा के लिए परियोजना इंचार्ज व बांध विरोध समिति के नुमांइदों को बुलाया गया था, लेकिन दोनों पक्ष हाज़िर नहीं हुए। परियोजना इंचार्ज ने डेम के विस्तृत परियोजना रपट की प्रतिलिपि उपलब्ध करा दी, जिस के मुख्य अंशों को श्री बलदेव घरसंगी ने पढ़ कर सुनाया।

2 **श्री छेरिङ दोर्जे** – मुख्य वक्ता के रूप में अपना वक्तव्य पेश किया। उन्होंने कहा, लाहुल की भू–संरचना अत्यन्त नाजुक किस्म की है। थिरोट परियोजना का चैनल इस का ज्वलंत उदाहरण है। ऐसा बड़ा डेम बनाना किसी भी तरह उचित नहीं है। इस से कोई व्यावहारिक लाभ मिलने वाला नहीं है। क्षेत्र का कोई व्यक्ति विस्थापित नहीं होना चाहता। सामरिक दृष्टि से भी यह खतरनाक है। इतने बड़े जलाशय पर चीन का एक बम आ गिरे तो क्या होगा इस की कल्पूना ही की जा सकती है। इस क्षेत्र में 48 फुट तक बर्फ पड़ने का रिकार्ड मोरावियन्ज़ ने दर्ज किया है। भारी हिमपात के वक्त पूरा इलाका एवलांच आने वाला क्षेत्र है। हमारे मैदानी इंजीनियर एवलांच क्या है और उसकी ताकत क्या है, जानते ही नहीं। ऐसे डेम चुटकियों में ध्वस्त हो सकते हैं। इस पर कोई अध्ययन नहीं हुआ है। बड़े प्रोजेक्टों के दुष्परिणाम कितने घातक हो सकते हैं यह किन्नौर और कुल्लू के सैंज आदि प्रोजेक्टों को देख कर ही समझा जा सकता है। चीन ब्रह्मपुत्र पर डेम बना रहा है जिस का भारत सरकार विरोध कर रही है लेकिन देश में वही काम खुद कर रही है, देश के ही लोगों को उजाड़ रही है यह दोगला पन स्वीकार नहीं किया जा सकता। अतः हम सब को जिस्पा के लोगों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर बांध के विरोध में खड़े होना चाहिए। हां यदि छोटे–छोटे रन ऑफ द रिवर वाले प्रोजेक्ट लगा कर बिना आबादी को हटाए और पर्यावरण को नुकसान बिना किए बिजली पैदा की जाती है तो ठीक है।

3 **डॉ. वीर सिंह रावल** – मैं भी बड़े बांधों के पक्ष में नहीं हूं। हालांकि में विशेषज्ञ नहीं हूं। फिर भी छेरिंग जी से सहमत हूं। यदि एक बड़ा एवलांच जलाशय में गिरता है तो वह किसी सुनामी से कम न होगी। ऐसे बांध एवलांच तो क्या उस की अग्रिम हवा मात्र से ही ध्वस्त हो सकते हैं। रन ऑफ द रिवर प्रेजेक्ट छोटे स्तर के बनने चाहिए। पाकिस्तान के साथ जलसंधि भी ऐसे प्रोजेक्ट के आड़े आती है।

4 **कर्नल प्रेम चन्द**– हिमालय एक बार 1962 में आहत हो चुका है अब एक बार फिर हिमालय आहत है। अपने ही लोगों द्वारा, उनके लालच के कारण। जनजातीय आबादी को उजाड़ने का काम कर रहा है। विस्थापन से एक पूरी सभ्यता और संस्कृति नष्ट होती है। हमारे बारे में फैंसले वे लोग, शिमला बैठे सचिव लोग ले रहे हैं जो यहां के बारे जानते नहीं, लोग कैसे जीते हैं, कैसे रहते हैं। उन फैंसलों में हमारा कोई प्रतिनिधित्व नहीं। ऐसे बड़े प्रोजेक्टों का खुल कर विरोध करना होगा। जिस्पा वाले दो–चार गांव क्या करेंगे। हम सब लाहुल–पांगी वासियों को एक साथ खड़ा होना होगा और हम इस काम के लिए हरदम तैयार हैं।

अन्त में मुख्य अतिथि हमारे गुरु जी, अध्यक्ष महोदय ठाकुर जी, आप सब लोग यहां आए, सेमीनार को सफल बनाया, आप सब का धन्यवाद।

(द्वितीय सत्र समाप्त)

आईये, लिखिये, पढ़िये, आईये, लिखिये, पढ़िये, आईये, लिखिये, पढ़िये, आईये, लिखिये, पढ़िये,

स्वंगला एरतोग

उद्देश्य :-

1. सांस्कृतिक विरासत को संजोना व संकलित करना व उन्हें प्रकाश में लाना, पुनर्जीवित करना।
2. लोक विधाओं को चिन्हित करना जो लुप्त होने के कगार पर हैं।
3. साहित्यिक रुचियों का विकास व सृजन के प्रति रुझान पैदा करना।
4. सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक उत्थान के लिए एक मंच बनाना जहां विचारों का सम्प्रेषण एवं जन प्रतिक्रिया का आकलन संभव हो।

स्वंगला एरतोग

लाहुल स्पिति में कला व संस्कृति
उत्थान हेतु सोसाइटी (रजि०)

रामशिला
अरवाड़ा बाजार, कुल्लू 175 101 (हि0प्र0)

सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट 21, 1860 के अधीन पंजीकृत संख्या ल.स./42/93

स्वंगला एरतोग सोसाईटी रजि0 के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार लोप्पा द्वारा गुप्ता प्रिंटर्ज, रामशिला से मुद्रित।

सम्पादक - डॉ0 छिमे शाशनी

'चन्द्रताल' अंक–27, नवम्बर 2009 – सितम्बर 2011